सीमित वितरण हेतु प्रकाशित

देखी सुनी

वर्ष 2013, अंक 25

प्रिय साथियों।

महिला न्याय व सशक्तिकरण को समर्पित हमारा यह त्रैमासिक संकलन श्रद्वांजली है वर्मा कमेटी के सूत्रधार जस्टिस जे.एस. वर्मा को जिन्होने मात्र 29 दिनो में देश और दुनिया से आये 70,000 से ज्यादा सुझाव और अध्ययन के आधार पर यौन हिंसा कानून पर अपनी ऐतिहासिक सिफारिश पेश की। इतिहास सदा उन्हें बराबरी और कानूनो में मौजूद लैंगिक भेदभाव को खत्म करने के महत्वपूर्ण फैसलो, सिफारिशों, समर्थन व सहयोग के लिये याद रखेगा। आज जस्टिस वर्मा हमारे बीच नहीं रहे पर उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सिफारिशो को लागू करवाने का कार्यभार हम सब की सांझी जिम्मेदारी है।

अपने पिछले अंक की तरह इस अंक को पन्नो पर भी हमने उनके द्वारा यौन हिंसा पर दिये गये कुछ महत्वपूर्ण सूझावों को संकलित करने का प्रयास किया है। आशा है हमारा ये प्रयास आपके सोचने के क्रम को गति देते हुए इस आंदोलन व दबाव को निरंतर आपका योगदान व शक्ति देता रहेगा व जास्टिस वर्मा द्वारा प्रस्तावित हिंसा रहित बराबरी के न्यायपूर्ण समाज की स्थापना मुमकिन होगी। देखी सुनी पर अपने सुझाव व प्रतिक्रिया हम तक अवश्य पहुचायें।

नीतू रौतेला

जागोरी संदर्भ समूह

असल गुनाहगार है मर्दानगी का दर्प

विश्लेषण

प्रफुल्ल बिदवई

दिल्ली में 23 वर्षीया फिजियोथेरेपी छात्रा के साथ हुए जघन्य बलात्कार और उपचार के दौरान उसकी मौत पर उमड़ा जनाक्रोश थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में मुख्यतः तीन तरह की प्रतिक्रियाएं आई हैं। पहली, बलात्कार मामले में कड़ी से कड़ी सजा; जैसे कि फांसी या रसायनिक दवाओं के जरिये बलात्कारी को पुंसत्वविहिन करने की मांग की है। दूसरी प्रतिक्रिया सुरक्षा-प्रबंध को लेकर है: फैशनपरस्तता के बजाय 'सौम्य' पोशाक तय कर, विशेष बसें चलाकर, ज्यादा से ज्यादा सीसीटीवी कैमरे लगा कर, सेलफोन के उपयोग पर पाबंदी लगा कर और ओवरकोट (पुडुचेरी का हैरतकारी सुझाव) पहना कर, महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की जाए। तीसरी प्रतिक्रिया निहायत ही मूर्खतापूर्ण और महिलाओं के प्रति घृणा का भाव रखने वाली है। इसके अंतर्गत सरकारी अधिकारियों, राजनीतिकों-खासकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस), भारतीय जनता पार्टी, जमायत-ए-इस्लामी के साथ कांग्रेस, समाजवादी पार्टी हैं, तो आसाराम बापू जैसे धार्मिक नेता भी आते हैं। यह पीड़िता पर रात में सफर करने को वारदात की वजह बताते हुए आरोप लगाते हैं कि अगर वह सरस्वती मंत्र का उच्चारण करती और दुराचारियों में से एक-दो को अपने भाई बनाकर उनसे इज्जत बचाने की गुहार लगाती तो उसका रेप नहीं हुआ होता। इन तरकीबों को आजमाने के बदले उनसे भिड़कर उस लड़की ने अपने लिए बलात्कार को न्योत लियाः 'ताली एक हाथ से नहीं बजती (आसाराम बापू)।' आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत कहते हैं, 'रेप केवल 'इंडिया' में होता है; यह ग्रामीण, परंपरागत 'भारत' में नहीं होता।'

ऐसी प्रतिक्रियाओं की जड़ महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की संस्कृति वाले उस पुरुषप्रधान पूर्वग्राही समाज में है, बलात्कार जिसका एक हिस्सा है। बलात्कार का स्त्री के यौन या यौन आकर्षण से कोई लेना-देना नहीं है। बलात्कार की शिकार होने वाली 10 माह की नवजात या चार वर्षीया बच्ची या 80 वर्षीया बुजुर्ग में न रूप का कोई दुर्निवार आकर्षण है, न भड़कीली पोशाक और न दुराचारियों से उनके कोई संबंध ही मायने रखते हैं। मोहन भागवत का परंपरागत ग्रामीण भारतीय समाज का गौरवगान भी गलत है। 1983 से 2009 के दौरान बलात्कार के तीन चौथाई मामले ग्रामीण भारत में ही दर्ज हुए

● महिलाओं की आजाद पहचान तथा बढ़ा हुआ आत्मविश्वास मर्दों की मर्दानगी को चुनौती देता है एवं उनकी असुरक्षाजनित-हिंसा को 'उकसावा' देता है। बलात्कार उसका ही एक प्रत्यक्षीकरण है

● सामूहिक बलात्कार तो और जघन्य है। शर्मनाक तरीके से यह अपने देश में एक चलन के रूप में बढ़ रहा है। बलात्कार भारत में महज निजी मामला नहीं है बल्कि एक सामाजिक-राजनीतिक पैथलॉजी है-यह जेंडर हिंसा का एक व्यापक हिस्सा है

थे। बलात्कार, खासकर दलित महिलाओं का, ग्रामीण जाति के दमन का मुख्य औजार है।

उपरोक्त तीसरी तरह की प्रतिक्रिया बलात्कार को भयानक तरीके से जायज ठहराती है लेकिन बाकी दोनों प्रतिक्रियाएं भी मसले को कायदे से देखने में विफल रही हैं। बलात्कार का संबंध मर्दाना ताकत, आक्रमण, वर्चस्व के प्रदर्शन और महिलाओं के अपमान से है। पुरुषप्रधान समाज में बलात्कार पौरुष का हिंसक दावा है। परंपरागत तौर पर मर्दानगी का ताल्लुक निर्भीकता, बहादुरी, जबर्दस्त जैसे मर्दाना गुणों से है। जैसा कि दक्षिण एशिया की स्त्रीवादी-कार्यकर्ता कमला भसीन कहती हैं, 'स्त्री जो होती है, वह पुरुष नहीं है...अगर मर्द से वर्चस्व और नियंत्रण करने की अपेक्षा की जाती है तो स्त्री को अवश्य ही उसकी समर्पिता होनी चाहिए; अगर मर्द आदेश देने की अपेक्षा करते हैं तो स्त्री से उनकी आज्ञाकारिणी की; अगर मर्द हुक्म चलाए और स्त्री उन्हें तामील करने से इनकार कर दे तो 'घर-परिवार की 'शांति' और 'सद्भाव' ही बिगड़ जाएगा।'

पुरुषत्व और स्त्रीत्व, लिंग के जैसे जैवीय गुण नहीं हैं। दोनों सामाजिक-सांस्कृतिक गुण हैं। जैसा कि स्त्रीवादी सिद्धांतकार कहते हैं, 'कोई महिला होना, एक लड़का या लड़की होना, कपड़े, भाव-भंगिमा, पेशा, सोशल नेटवर्क और व्यक्तित्व का व्यवहार है; जैसे खास तरह के यौनांगों से युक्त होना।' दक्षिण एशियाई समाज विशेष रूप से पुरुषवादी समाज है, जो औरत की पत्नी, मां, बेटी या बहन के अलावा और कोई संज्ञा मानने से इनकार करता है। उन संज्ञाओं के अतिरिक्त बाकी सारी स्त्रियां, जैसा कि देश के सर्वोच्च पद पर रहे (अब दिवंगत) एक नेता का कहना था, 'भोग की चीज हैं'। यह भारत ही है, जहां मर्दों को कन्या भ्रूण हत्या तक के असीमित अधिकार हासिल हैं। पिछली सदी में ही 35 मिलियन (लगभग साढ़े तीन करोड़) महिलाएं 'गायब' हो चुकी हैं। स्त्रियों के विरुद्ध भेदभाव बदस्तूर है। इसके तहत, घर में बेटियों को बेटों की तुलना में भोजन, स्वास्थ्य व शिक्षा पर भी बहुत कम ध्यान दिया जाएगा। इनमें से ज्यादातर तो अपनी किशोरावस्था या अपने आंतरिक तकाजों के अनुभव कभी नहीं कर पाएंगी। ये लड़कपन से अचानक पत्नी या मां बना दी जाती हैं-जैसे उनके शरीर पर अपना कोई अख्तियार ही नहीं है।

बलात्कार स्त्रियों के लिए कलंक है और भारत में कौमार्य की अवधारणा के चलते बहुधा इसकी रिपोर्ट दबा दी जाती है। लेकिन बलात्कार अपने देश में सबसे तेजी से बढ़ने वाला अपराध है। रिपोर्ट के मुताबिक 1971 से 2011 के दौरान 1953 के 250 फीसद वृद्धि की तुलना में 873 फीसद की बढ़ोतरी हुई है। इसका एक कारण तो यह है कि महिलाएं अधिक से अधिक तादाद में, कहीं-कहीं तो पुरुषों के मुकाबले ज्यादा ही शिक्षित हो रही हैं और नौकरीपेशा भी। देश के कुल श्रमबल में उनकी भागीदारी का अनुपात तेजी से बढ़कर 25 फीसद तक पहुंच गया है। यह और उनकी आजाद पहचान तथा बढ़ा हुआ आत्मविश्वास मर्दों की मर्दानगी को चुनौती देता है एवं उनके असुरक्षाजनित-हिंसा को 'उकसावा' देता है। बलात्कार उसका ही एक प्रत्यक्षीकरण है।

सामूहिक बलात्कार तो और जघन्य है। शर्मनाक तरीके से यह अपने देश में एक चलन के रूप में बढ़ रहा है। बलात्कार भारत में महज निजी मामला नहीं है बल्कि एक सामाजिक-राजनीतिक पैथलॉजी है-यह जेंडर हिंसा का एक व्यापक हिस्सा है। देश में हर 12 मिनट पर किसी महिला से छेड़खानी होती है और प्रत्येक 21 मिनट पर एक महिला की इज्जत लूट ली जाती है। हालांकि कठोर दंड के जरिये बलात्कार रोकने का विचार एक भ्रामक विश्वास है। यह न्याय करने का नहीं, बदला लेने का नुस्खा है। 'तुमने बलात्कार किया, हम तुम्हें काट डालेंगे' का नारा रेप पैथलॉजी का ही आख्यान है। मौत की सजा के जरिये बलात्कार या सामूहिक बलात्कार को नहीं रोका जा सकता क्योंकि इस जुर्म की जड़ मर्दानगी से जुड़ी हिंसा में है। फांसी की सजा के विरोध में दिए जाने वाले अनेक तर्कों की बात जाने भी दें तो केवल इसके प्रावधान से ही बलात्कार मामले में हत्याओं की दर काफी बढ़ जाएंगी। मृत्यु दंड के प्रावधान की मांग के समान ही दूसरी मांग है-दवाओं के जरिये बलात्कारी को पुंसत्वविहीन कर देना। यह तालिबान-तरीके का 'न्याय' है। इसमें व्यावहारिक आएगी, फिर अपराधी दवा के असर को आसानी से बेअसर कर सकता है। ऐसे मामले में हर समय सतत निगरानी की जरूरत होती है।

पुरुष की यौनेच्छा को शमित करना, मसले का हल नहीं है : बलात्कार का यौन संबंध से लेना-देना नहीं है बल्कि इसका ताल्लुक ताकत और दबंगई से है। फिर, एक सभ्य समाज में कोई भी दंडात्मक प्रावधान क्रूर और अमानवीय नहीं हो सकता। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि हमें बलात्कार के नए कानून की जरूरत नहीं है-मौजूदा कानून को तेजी से लागू करना ही काफी है। यद्यपि हमें शादी में बलात्कार मामले पर अवश्य ही कानून बनाना चाहिए, जैसा कि 100 देशों ने लागू किया हुआ है, और दो उंगलियों से बलात्कार पीड़िता की मेडिकल जांच को प्रतिबंधित कर देना चाहिए।

हमें बलात्कार मामलों के निपटारे की मौजूदा दर को 26 फीसद से आगे ले जाना है। बेहतर पुलिस प्रबंधन और अकाट्य साक्ष्य जुटाने की कोशिश के साथ-साथ दक्षिण एशियाई समाज की बुनावट पर भी ध्यान देना होगा। महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हमें पुरुष-महिलाओं और लड़के लड़कियों के बीच ज्यादा से ज्यादा संवाद/मेलजोल बढ़ाने की आवश्यकता है, ताकि एक-दूसरे से बगैर आक्रमण और हिंसा के; प्रतिष्ठा और प्रेम के साथ वे अपने को जोड़ सकें। यही एक रास्ता है मर्दानगी/बलात्कार के अनर्थ से छुटकारा पाने का।

(लेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी हैं)

राष्ट्रीय सहारा 14.1.2013

बजट में भी हाशिये पर स्त्री

डॉ. रंजना कुमारी

महिला अधिकारिता संगठन से संबद्ध

- स्टेइंग अलाइव रिपोर्ट को जारी करते वक्त महिला बाल कल्याण मंत्री कृष्णा तीरथ ने कहा कि उनका मंत्रालय चालू वित्तीय वर्ष में देश के सर्वाधिक अपराधग्रस्त 100 जिलों में 100 करोड़ रुपये की मदद से सीएसएस लागू करेगा
- सवाल है कि क्या सरकार मामूली अपराध क्षेत्र की महिलाओं की सुरक्षा के लिए जवाबदेह नहीं है?

सार्वजनिक

दायरे में बढ़ी हिंसा निजी घेरे में हो रही हिंसा से कम है। तथाकथित पूरी तरह संरक्षित कही जाने वाली 'परिवार' नामक संस्था में भारतीय स्त्री की अरक्षा ने अति खतरनाक आयाम लिये हैं। आंकड़े (एनएफएचएस-3) बताते हैं कि पांच में से दो विवाहिताएं घरेलू हिंसा की शिकार होती ही हैं। यह तब है जबकि घरेलू हिंसा से स्त्री की सुरक्षा कानून (पीडब्ल्यूडीवीए) के लागू होने का यह सातवां साल है। लागू कानून यह संदेश देता है कि घर-परिवार में होने वाले मामूली झगड़े पहले से बढ़े हैं और इसने स्त्री विरुद्ध हिंसा का भयावह रूप ले लिया है। यह कानून प्रतिरक्षा अधिकारी (पीओ), सेवाएं देने वाले; जैसे, आश्रय गृह और चिकित्सा सुविधाएं मुहैया कराने वाले और पीड़ित महिला तक कानून की पहुंच वाली दुनिया का उल्लेख करता है। हालांकि पीडब्ल्यूडीवीए भी, स्त्री अधिकार संरक्षा के अन्य नियमनों की तरह, पर्याप्त बजटीय प्रावधान के अभाव में संतुलन खो रहा है। जरूरतों के मुताबिक धन का इंतजाम न किए जाने से पीडब्ल्यूडीवीए के क्रियान्वयन पर बुरा असर पड़ा है। इस तरह कि आज भी बेशुमार महिलाएं अपने हित में बने इस कानून से अनजान हैं। जिन संरक्षण अधिकारी (जैसे बाल विकास परियोजना अधिकारी, जिला समाज कल्याण अधिकारी इत्यादि) को हिंसा की शिकार स्त्री तक सबसे पहले पहुंचने की बात की गई है, वे पहले से ही तय कामों के बोझ तले लदे मिलते हैं। नतीजा होता है कि बुरी तरह बिगड़ी परिस्थितियों से निबटने के लिए कभी-कभी किसी नौसिखुए को मौके पर भेज दिया जाता है। इनके अलावा, सेवा प्रदान करने वालों को भी इतनी समुचित राशि नहीं मिलती कि वह अपनी निर्धारित जिम्मेदारियों को ठीक से निबाह सके। हिंसा की सही वजहों की स्पष्ट समझदारी के अभाव में पीओ, एसपी, पुलिस, वकील और न्यायाधीश बहुधा परिणामों और समझौते कराने जैसे फैसले लेते हैं या पीड़िता पर 'बुरी औरत' होने और 'घर तोड़ने वाली' जैसे आरोप चस्पां कर देते हैं।

अतः स्त्री सशक्तीकरण ऐसे मिजाज में सही तरीके के सुधार लाने में अहम किरदार निभाता है। सरकार के भीतर भी ऐसी कोई प्रणाली नहीं विकसित की गई है, जहां पीडब्ल्यूडीवीए मामलों की रपट कर सके और निगरानी के ब्योरे दे सके। यह पीडब्ल्यूडीवीए के क्रियान्वयन के हरेक स्तर; जैसे, महिलाओं में उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता फैलाने, क्षमता अभिवर्द्धन, नोटिस की सेवा, आदेश के लागू होने या उसका उल्लंघन किए जाने के परिणाम आदि पर विपरीत असर डालता है। सबसे बढ़कर तो हिंसा की शिकार औरत को सामान्य करने के लिए परामर्श देने, आश्रय, स्वास्थ्य सेवाएं और वित्तीय सहायता की जरूरत पड़ती है।

हालांकि अभी कुछेक ही राज्यों ने पीडब्ल्यूडीवीए को लागू करने की दिशा में कदम उठाए हैं लेकिन इन प्रदेशों को कभी भी ये योजनाएं फालतू लगीं तो वे उन्हें जारी करने से हाथ खींच सकते हैं। अपराध की ऊंची दर (खासकर घरेलू हिंसा मामले में) वाले किंतु आर्थिक रूप से पिछड़े अनेक राज्यों ने इस दलील से पीडब्ल्यूडीवीए के लिए अलग से धन का आवंटन नहीं किया है कि वे इसे मौजूदा महिला कल्याण योजना के अंतर्गत ही पीडब्ल्यूडीवीए के प्रावधानों को क्रियान्वित कर लेने में सक्षम हैं। चूंकि महिला एवं बाल कल्याण मंत्रालय (एमडब्ल्यूसीडी) ने अधिनियम के तहत बजट आवंटन के कोई मानक उन्हें नहीं थमाए हैं, ऐसे में उसकी पहुंच के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।

जेंडर बजट

महिलाओं के लिए आवंटन

(आंकड़े 1000 करोड़ रुपये में)

	100%	30%	कुल
2007-08	8.4	14	22.3
2008-09	14.9	34.7	49.6
2009-10	15.5	40.8	56.3
2010-11	18.5	48.6	67.1
2011-12	20.5	56.4	76.9
2012-13	23	65.2	88

स्रोत : सीबीजीए

दरअसल, पीडब्ल्यूडीवीए के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त कोष आवंटन में सरकार की विफलता घरेलू हिंसा रोकने, स्त्रियों की सुरक्षा और समानता सुनिश्चित करने की उसकी प्रतिबद्धता, जिसका भारतीय संविधान में समर्थन किया गया है; पर सवाल खड़े करती है

यद्यपि महिलाएं सरकार के सालाना वित्तीय आंकडों को खंगालना शुरू कर दिया है; उनमें स्त्री के सभी मामलों को कोई प्राथमिकता नहीं दी गई है। इसका स्पष्ट मतलब है कि महिलाओं से जुड़ी परियोजनाओं को मामूली राशि दी गई है, जैसा कि पीडब्ल्यूडीवीए के क्रियान्वयन मद में किया गया है। वर्तमान में चल रहीं अधिकतर परियोजनाओं के लिए बहुत कम धन आवंटित किया गया है जबकि वे 12 वीं पंचवर्षीय योजना के लिए महिलाओं की एजेंसी और सशक्तीकरण पर संचालन समिति द्वारा प्रस्तावित हैं। 2012-13 के बजट अनुमानों के मुताबिक मंत्रालय का सकल बजट 18,500 करोड़ रुपये का है, जिसमें से महिलाओं के कल्याण मद में 858.68 करोड़ रुपये ही रखे गए हैं। हालांकि पीडब्ल्यूडीवीए का बजट अनुमान में उल्लेख किया गया है लेकिन इसके लिए राशि अति न्यून 20 करोड़ रखी गई है। राष्ट्रीय महिला आयोग (एनसीडब्ल्यू) और नागरिक समाज की एक समिति ने पीडब्ल्यूडीवीए पर प्रभावी अमल के लिए मार्च 2012 में केंद्र प्रायोजित योजना (सीएसएस) को अंतिम रूप दिया था, जिसके तहत इस मद में 1158 करोड़ रुपये का वार्षिक बजट तय किया गया था। महिला एजेंसी और सशक्तीकरण के लिए काम करने वाले कार्यकारी समूह ने 12 पंचवर्षीय योजना की पूरी अवधि में शुरू होने वाली नये कार्यक्रमों के लिए महज 450 करोड़ रुपये के कोष का प्रस्ताव किया था। यह अनुमानित सालाना रकम 1158 करोड़ रुपये की तुलना में बहुत मामूली और अपर्याप्त ठहरती है। हालांकि इस बात पर चुप रहा गया है कि कब ये सीएसएस लागू की जाएंगी और पीडब्ल्यूडीवीए के क्रियान्वयन पर कितना धन आवंटित किया जाएगा।

स्टेइंग अलाइव रिपोर्ट को 21 जनवरी, 2013 को जारी करते वक्त अपने उद्घाटन भाषण में महिला बाल कल्याण मंत्री कृष्णा तीरथ ने साझा किया कि उनका मंत्रालय चालू वित्तीय वर्ष में देश के सर्वाधिक अपराधग्रस्त 100 जिलों में 100 करोड़ रुपये की मदद से सीएसएस लागू करेगा। यहां सवाल उठता है कि क्या सरकार मामूली अपराध क्षेत्र की महिलाओं की सुरक्षा के लिए जवाबदेह नहीं है? इससे भी बढ़कर यह कि 100 करोड़ की राशि भी अनुमानित सालाना बजटीय जरूरत 1158 करोड़ से कम है। दरअसल, पीडब्ल्यूडीवीए के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त कोष आवंटन में सरकार की विफलता घरेलू हिंसा रोकने, स्त्रियों की सुरक्षा और समानता सुनिश्चित करने की उसकी प्रतिबद्धता, जिसका भारतीय संविधान में समर्थन किया गया है; पर सवाल खड़े करती है। इस चेतावनी को वित्त मंत्रालय की सहमति-मदद से ही निबटा जा सकता है। हालांकि वित्त मंत्रालय का इस मसले पर स्त्री समूहों के साथ मुलाकात और बातचीत का द्वार बंद करना दुर्भाग्यपूर्ण है। लिहाजा, यहां हमें माननीय मंत्री गण से पूछना है कि 'आप लोग जब कानून पर अमल नहीं कर सकते तो उन्हें बनाते ही क्यों हो?'

राष्ट्रीय सहारा 23.2.2013

आर्थिक आजादी की दिशा में बढ़ें कदम

मनीषा सिंह

आज की तारीख में दुनिया में सिर्फ सऊदी अरब ऐसा मुल्क है जहां पूरी तरह महिलाओं द्वारा संचालित एक बैंक (ऑल वूमेन) काम कर रहा है। इधर जब वित्तमंत्री पी. चिदंबरम ने बजट पेश करने के दौरान देश में नवम्बर तक इसी तरह का पहला ऑल वूमेन बैंक खोलने और इसके लिए आरंभ में एक हजार करोड़ रुपयों की व्यवस्था सरकार की ओर से करने की घोषणा की, तो एक उम्मीद बंधी कि आखिरकार सरकार का ध्यान महिलाओं से जुड़े उस पहलू की तरफ गया है जिसकी वजह से उनकी स्थिति सदियों से देश के पितृसत्तात्मक समाज में दीन-हीन याचक जैसी बनी हुई है। लेकिन सौ टके का सवाल जहां का तहां है कि क्या इसे वाकई एक गंभीर प्रयास माना जाए और क्या इससे वास्तव में महिलाओं की आर्थिक हैसियत में कोई बदलाव आएगा? साथ ही यह भी कि पूरी तरह महिला हितों का चिंता करने वाले इस बैंक का स्वरूप कैसा होगा?

इन सवालों के उत्तर तो आने वाले समय में मिल ही जाएंगे लेकिन इस पहल के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की आत्मनिर्भरता का प्रश्न एक बार फिर जेहन में घूम रहा है। इस तथ्य से हर कोई भलीभांति परिचित है कि आर्थिक आजादी का अर्थ है- अन्य सभी तरह की आजादियों को हासिल करना। यूं तो यह तथ्य या परिभाषा स्त्री और पुरुष, दोनों पर समान रूप से लागू होती है, पर तमाम अर्थों में महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता का प्रश्न कहीं ज्यादा मायने रखता है और उस पर जब-तब जरूरी बहस भी होती रहती है। देश में महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए काम करने वाली संस्था- सेल्फ एप्लायड वूमेंस एसोसिएशन (सेवा) की संस्थापक और मैगसेसे अवार्ड विजेता इला बेन भट्ट ने पिछले दिनों एक मौके पर कहा था कि बैंक की पासबुक के बिना स्त्री की आजादी मुमकिन नहीं है। उनका यह कथन भी गौरतलब है कि हमारे देश में कुछ महिलाओं को जब से पासबुक की ताकत हासिल हुई है, उन्होंने दिखा दिया है कि बचत, ईमानदारी और आर्थिक प्रबंधन में उनका कोई सानी नहीं है। उल्लेखनीय है कि हमारे देश में सेवा बैंक के माध्यम से लाखों महिलाओं ने महज पांच या दस रुपये रोज बचाकर वह आत्मनिर्भरता हासिल कर ली है, जो उन्हें अनुनय-विनय या याचना से कदापि नहीं मिल सकती थी। इस प्रसंग में एक और तथ्य का उल्लेख जरूरी है कि जहां देश में अनेक लोग हेराफेरी कर कर्ज के रूप में ली गई बैंक की रकम डकार जाते हैं, वहीं बैंक से कर्ज लेने वाली निर्धन तबके की 95 फीसद तक महिलाएं ईमानदारी से कर्ज चुकाती आई हैं।

महिला बैंक के सवाल के मद्देनजर भारतीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की आर्थिक आजादी पर चिंतन करते वक्त कुछ वास्तविकताओं पर गौर करना जरूरी है। यह एक सच्चाई है कि हमारे पुरुष-प्रधान और पोंगापंथी समाज में कभी भी स्त्री की किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता के बारे में गंभीरता से नहीं सोचा गया। आर्थिक मामलों से स्त्री को दूर रखने की एहतियात तो आज का तथाकथित आधुनिक पुरुष वर्ग तक बरतता दिखता है। ऐसे में, घरों में कैद रहने वाली या आसपास के घरों अथवा खेतों में काम करने वाली देश की 94 फीसद महिलाएं भला कैसे अपने जीवन में किसी सुधार की अपेक्षा कर सकती हैं।

विडम्बना यह है कि बीड़ी बनाने, रंगाई, सिलाई-कढ़ाई करने, टोकरी बुनने और गली-गली फेरी लगाकर सामान बेचने या खेतों में काम करने वाली कामगार महिलाओं की थोड़ी-बहुत आय पर भी ज्यादातर मामलों में उनके घर के पुरुषों का कब्जा रहता है। महिलाएं भी अपनी कमाई पति के हवाले कर इस भाव के साथ संतुष्ट और निश्चिंत रहती हैं कि आखिर तो उनका पैसा घर-गृहस्थी पर ही खर्च हो रहा है। यहां तक तो ठीक है कि स्त्री द्वारा कमाया गया पैसा घर चलाने और बच्चों के लालन-पालन पर खर्च हो जाए पर यह दृश्य देश के पहाड़ी अंचलों से लेकर सुदूर दक्षिण और गुजरात से लेकर पूर्वोत्तर के राज्यों तक बेहद आम है कि तमाम पुरुष घर की स्त्रियों की मेहनत मशक्कत से कमाई आय को शराब, जुए या नशे में उड़ा देते हैं।

ऐसी स्थिति में महिलाओं की आर्थिक आजादी का सवाल उठना लाजिमी है। यही नहीं, कई अन्य कारणों से भी यह सवाल जरूरी है। जैसे विज्ञान संबंधी तथ्य गौरतलब है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का जीवनकाल अधिक होता है। यानी कई मौकों पर पति की मृत्यु हो जाने पर महिलाओं को शेष जीवन बच्चों के ऊपर निर्भर रहते हुए बिताना पड़ता है। निर्धन समाज में तो हालात और भी भयावह हैं। वृंदावन के आश्रमों में रहने वाली हजारों विधवाओं की नारकीय स्थिति बताती है कि विधवा के रूप में महिलाओं को अत्यधिक तिरस्कृत जीवन इसी कारण जीना पड़ता है, क्योंकि उनके हाथ में थोड़ी भी जमापूंजी नहीं होती। यही नहीं, तलाक और अलगाव के मामलों में भी देखने में आया है कि गुजारा भत्ता न मिल पाने की दशा में महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। कामकाजी महिलाएं जानती हैं कि वेतन के रूप में मिलने वाली धनराशि उनके जीवन में कितनी आजादी, कितना सुकून और कितनी आत्मनिर्भरता लाती है। खास तौर से वे महिलाएं अपने जीवन और भविष्य को लेकर और ज्यादा निश्चितता महसूस करती हैं, जिनके बैंक खाते में ठीक-ठाक रकम जमा हो और जिसके मनचाहे उपयोग के लिए वे स्वतंत्र हों।

यह भी एक प्रमाणित तथ्य है कि महिलाएं अपने धन का बेहतर इस्तेमाल करती हैं। जो लोग मध्यवर्गी कामकाजी महिलाओं का यह कहकर उपहास करते हैं कि अपनी कमाई का ज्यादातर हिस्सा वे अपने कपड़ों और प्रसाधन पर खर्च कर देती हैं, वह भी उन्हें हल्के में ही आंकते हैं। उन्हें शायद यह नहीं मालूम कि देश की हजारों कामकाजी महिलाएं अपनी पूरी गृहस्थी का खर्च अकेले बूते पर चला रही हैं। हालांकि इस ट्रेंड में एक नुक्स यह है कि अपनी सारी कमाई घर-गृहस्थी के नाम खर्च कर देने की स्थिति में वे स्वयं क्वालिटी लाइफ नहीं जी पाती हैं और अपने बुढ़ापे के लिए भी पर्याप्त बचत नहीं कर पाती हैं। परिणामस्वरूप अक्सर बच्चों द्वारा उपेक्षित कर दिए जाने के चलते उनके लिए जीवन यापन मुश्किल हो जाता है। इसलिए अगर वे स्वास्थ्य या चिकित्सा बीमा जैसी योजनाओं में अपना कुछ धन लगाएं, तो निश्चय ही आने वाला दौर उनकी स्थिति में गुणात्मक सुधार लाने वाला हो सकता है। इन स्थितियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि ऑल वूमेन बैंक महिलाओं की आर्थिक ही नहीं, सामाजिक हैसियत सुधारने में भी काफी मददगार साबित हो सकता है। लेकिन इसकी सार्थकता तभी है जब यह व्यवहार में महिलाओं का हित चिंतन करे।

राष्ट्रीय सहारा 23.2.2013

महिलाओं के लिए बैंक जैसे कदम महज 'प्रतीक' हैं : जेएस वर्मा

अलीगढ़ (एजेंसी)। पूर्व प्रधान न्यायाधीश जेएस वर्मा ने शनिवार को कहा कि महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तनों के बिना महिलाओं के लिए प्रस्तावित विशेष बैंक जैसे कदम देश में उनके प्रति न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में महज प्रतीक हैं।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में तृतीय वार्षिक केपी सिंह स्मृति व्याख्यान देते हुए वर्मा ने महिला बैंक की स्थापना के प्रस्ताव का हवाला दिया। उन्होंने कहा कि 'जब तक सरकार और समाज दोनों स्तरों पर सोच में पूरी तरह बदलाव नहीं आएगा तब तक इस तरह के प्रतीकात्मक उपायों का कोई फायदा नहीं होगा।' पूर्व प्रधान न्यायाधीश ने दिल्ली में 16 दिसम्बर की सामूहिक बलात्कार की घटना के बाद महिलाओं के खिलाफ अपराधों से संबंधित कानूनों की समीक्षा करने वाली तीन सदस्यीय समिति का नेतृत्व किया था।

वर्मा ने कहा, 'किसी भी समाज में न्याय का तत्व पारदर्शिता है। सीधा सच यह है कि समाज हमारे घरों में महिलाओं के साथ वास्तविक न्याय को मजबूत करने की जिम्मेदारी से बच नहीं सकता।' समिति ने महिलाओं के प्रति अपराधों को रोकने के लिए कड़े कानूनों की सिफारिश की थी, लेकिन पूर्व प्रधान न्यायाधीश का मत था कि 'जब तक समाज का अनुमोदन, समर्थन नहीं मिलता तब तक कानूनी प्रणाली में किसी भी बदलाव का कोई फायदा नहीं होगा।' वर्मा ने कहा कि 'यदि मौजूदा कानूनों और शासन संबंधी दिशा निर्देशों का पूरी तरह कार्यान्वयन हुआ होता तो राष्ट्रीय राजधानी में 16 दिसम्बर को भयावह बलात्कार की घटना नहीं हुई होती।' महिलाओं के खिलाफ अपराधों को लेकर कुछ तबकों में 'संवेदनशीलता की कमी' का हवाला देते हुए वर्मा ने दिल्ली बलात्कार की घटना के मद्देनजर 'कुछ तथाकथित गुरुओं' की टिप्पणियों पर हमला बोला। उन्होंने कहा कि समाज के ऊपरी तबके की ओर से आई टिप्पणियां 'पक्षपातपूर्ण, पुरुष प्रधान सोच' के 'हास्यास्पद' उदाहरण हैं।

राष्ट्रीय सहारा 3.3.2013

बजट तक पहुंची 'निर्भया' की गूंज

संदर्भ

अंजलि सिन्हा

निर्भया, जिसने दिल्ली ही नहीं, देश के तमाम हिस्सों में तरुणाई को आन्दोलित किया, जो महिलाओं की बढ़ती असुरक्षा एवं उनके खिलाफ बढ़ती यौन हिंसा का प्रतीक बन कर देश में उभरी, उसने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि उसकी कुर्बानी को एक दिन सरकार को भी तस्लीम करना पड़ेगा। अपना आठवां वजट पेश करते हुए वित्तमंत्री पी चिदम्बरम द्वारा की गयी यह घोषणा कि यह सरकार महिलाओं की सुरक्षा के लिए विशेष निर्भया फंड बनाने जा रही है और जिसके लिए एक हजार करोड़ रुपए आवंटित किए गए हैं, से यही निष्कर्ष निकलता है। मालूम हो कि इस फंड के इंतजाम के लिए ढांचा बनाने, उसके दायरे को तय करने एवं उसे आवंटित करने की जिम्मेदारी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को सौंपी गयी है। प्रस्तुत मंत्रालय को अतिरिक्त 200 करोड़ की राशि भी दी जा रही है ताकि वह कठिन परिस्थितियों में रहनेवाली महिलाओं के मामलों में सहायता प्रदान कर सके।

स्त्रियों में आ रही जागृति, उनके बढ़ते दायरे को रेखांकित करता दूसरा कदम यह भी दिखता है कि इस बार बजट में सार्वजनिक क्षेत्र में देश के पैमाने पर महिला बैंक बनाने का प्रस्ताव रखा गया है और उसके लिए भी एक हजार करोड़ रुपए का प्रावधान है। अक्टूबर तक इस बैंक के स्थापित किए जाने की योजना है,'जो मुख्यतः महिलाओं एवं महिलाओं द्वारा संचालित उद्योगों, महिला स्वयं सहायता समूहों और महिलाओं के जीवनयापन में सहायक होगा। इसमें मुख्यतः महिलाएं ही काम करेंगी ताकि उनके जेंडर व आर्थिक समावेशन के मुद्दों का ठीक से समाधान हो सके।

स्त्रियों की सुरक्षा की गारंटी के लिए इस तरह के फंड का गठन किस हद तक कारगर होगा या आर्थिक सशक्तिकरण के सन्दर्भ में महिलाओं का बैंक उनकी कितनी सहायता करेगा, इन मुद्दों की विवेचना करने से पहले इस बात को समझना जरूरी है कि इस बजट पर हाशिये से केन्द्र में पहुंचने के लिए तत्पर स्त्री समुदाय की दस्तक जरूर सुनाई देती है। वैसे इसमें कोई दो राय नहीं कि हम दुनिया का एकमात्र देश होंगे जहां आवश्यक सामाजिक सेवाओं के सार्वजनिक वितरण को 'योजनाओं' के सन्दर्भ में देखा जाता है, जिन्हें कृतज्ञ जनता के लिए सरकारें 'लोकरंजक खर्चों' के नाम पर पेश करती हैं। अन्यथा तमाम देशों में यह सरकारों का ही काम होता है कि वह जनता के पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, सैनिटेशन और रोजगार व जीवनयापन जैसी स्थितियों को सुगम बनाएं। जैसा कि पिछले साल के बजट विश्लेषण में प्रोफेसर जयति घोष ने कहा था कि हम इन्हें 'योजनाओं' के तौर पर देखने के आदी हो गए हैं, इसलिए थोड़ी बहुत बढ़ोत्तरी होने मात्र से हम खुश हो जाते हैं, इसी बात पर कृतज्ञ रहते हैं कि कम से कम सरकार ने खर्चा घटाया तो नहीं है।'

इस रोशनी में अगर हम वित्तमंत्री पी चिदम्बरम द्वारा प्रस्तुत आठवें बजट को देखें, जिसे मीडिया के एक हिस्से द्वारा समावेशी बजट की संज्ञा दी जा रही है, तो कुछ बातें समझ में आती हैं। जैसे इसे कहीं न कहीं अगले साल होने वाले आम चुनावों के मद्देनजर बनाया गया है, जिसमें हर सेक्टर को कुछ न कुछ रियायत देने की बात की गयी है और महिलाओं का खास ध्यान रखने की भी कोशिश की गई है। अगर समावेशी बढ़ोत्तरी के लिए कई योजनाओं का ऐलान

किया गया है, जिसमें फोकस महिलाओं समेत सामाजिक क्षेत्र एवं ग्रामीण भारत दिखता है तो वहीं कारपोरेट क्षेत्र को भी खुश रखने की कवायद की गयी है। लेकिन बड़ा प्रश्न यह उठता है कि मसलों की व्यापकता को देखते हुए विभिन्न क्षेत्रों में आवंटित रकम काफी है या नहीं।

जैसे स्वास्थ्य को ही देखें जिसका सम्बन्ध समूची आबादी से है, का खर्चा पिछले साल 30,702 करोड़ रुपए था और इस साल 37,330 करोड़ हो गया है। अगर भारत के सकल घरेलू उत्पाद को देखें तो इसका यह 0.35 फीसद ही बैठता है। मालूम हो कि सबसहारन अफ्रीका के तमाम गरीब देशों में भी यह प्रतिशत हमसे कई गुना ज्यादा है। जब लगता है कि मानवीय विकास सूचकांक एवं जीवन की परिस्थितियों के मामले में हम अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कितने पिछड़े हैं। महिला और बाल स्वास्थ्य की बात करें तो हमारे देश में मातृ शिशु मृत्यु दर का चिन्ताजनक होना दशकों से एक बड़ा सवाल बना हुआ है।

बजट में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित आईसीडीएस (समेकित बाल विकास सेवा) योजना के लिए 17,7,00 करोड़ रुपयों का आवंटन किया गया है, जो पिछले साल की तुलना में 11.7 फीसद ज्यादा है। मगर क्या इस बढ़ोत्तरी से हम खुश हो सकते हैं। निश्चित ही नहीं। इसकी कई वजहें हैं। अभावग्रस्त बच्चों की शुरुआती देखभाल एवं शिक्षा के लिए चलायी जा रही प्रस्तुत योजना के लिए किए गए इस बार के आवंटन को देखें तो वह उम्मीद से कम है। पिछले साल भी इस राशि में बढ़ोत्तरी की गयी थी लेकिन तब भी सवाल उठा था कि एक तो इसका अधिकतर हिस्सा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं एवं सहायकों के मानदेय में खर्च हो जाता है, दूसरा सुप्रीम कोर्ट द्वारा बार-बार की गयी आलोचना के बावजूद अब भी हम इस योजना को सार्विक या युनिवर्सल नहीं बना सके हैं। आंगनबाड़ी कार्यकताओं को अब भी कानूनी तौर पर तय न्यूनतम राशि नहीं दी जा रही है। स्पष्ट है कि यदि सरकार अभावग्रस्त बच्चों के कल्याण के लिए गंभीर है तो उसे इस राशि को अधिक बढ़ाना चाहिए था। इसका सीधा सम्बन्ध महिलाओं की अर्जक क्षमता बढ़ाने से भी है क्योंकि बच्चों के पालन-पोषण की अत्यधिक जिम्मेदारी के कारण उन्हें सार्वजनिक दायरे की नौकरियों से अक्सर हाथ धोना पड़ता है।

अन्त में, महिला सशक्तिकरण व कल्याण के लिए किये गये प्रावधानों का स्वागत होना चाहिए लेकिन यह सावधानी बरतनी जरूरी है कि नयी योजनाएं शुरू करने के क्रम में पुरानी चल रही योजनाओं को चुपचाप बन्द न कर दिया जाए। याद रहे कि 12 वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बनी 'स्टीयरिंग कमेटी ऑन वूमेन्स एजेंसी एंड एम्पॉवरमेंट' के सुझावों के विपरीत महिलाओं के लिए पहले से चली आ रही योजनाओं के लिए भी आवंटन कम था। 11वीं योजना में महिला सशक्तिकरण के मुख्य माध्यम के तौर पर प्रस्तुत की गयी 'स्वयंसिद्धा' योजना के लिए तो कोई फंड आवंटित ही नहीं किए गए, जबकि स्टीयरिंग कमेटी ने प्रस्ताव रखा था कि इस योजना को देश के हर ब्लॉक स्तर तक फैलाया जाए और 12 वीं योजना में उसके लिए कम से कम 1700 करोड़ रुपए का आवंटन हो। कहने का आशय सिर्फ इतना है कि लोक-लुभावन और समावेशी योजनाओं की सार्थकता तभी है जब व्यावहारिक तौर पर उनका क्रियान्वयन ठीक तरीके से हो। महिला सशक्तिकरण की दिशा में उठाये गये प्रयासों के प्रति सरकार गंभीर होगी, तभी बात बनेगी।

राष्ट्रीय सहारा 23.2.2013

आर्थिक सुरक्षा भरेगी जीवन में रंग

विधवा व्यथा

अलका आर्य

फागुन में उंमग भरने वाला, उल्लास का उत्सव है होली और इस बार विधवाओं की नगरी के नाम से मशहूर वृंदावन में बड़ी संख्या में विधवाओं व बेसहारा महिलाओं ने एक साथ होली खेली। चार दिन तक चला यह होली महोत्सव विधवाओं के खिलाफ सामाजिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में देखा जाने लगा है। सवाल है कि विधवाओं के खिलाफ सामाजिक पूर्वाग्रहों के सदियों पुराने कुचक्र को तोड़ने के लिए समग्र प्रयास व सामाजिक मुहिमों के साथ-साथ सत्ता चलाने वाले राजनेताओं व ब्यूरोक्रेसी की समझ में सकारात्मक बदलाव लाने पर जोर देना होगा। दूसरे, इस पर ध्यान देना होगा कि धर्म के आकाओं पर इनका अपने हितों के लिए इस्तेमाल करने का जो आरोप अक्सर लगाया जाता रहा है, उसे नजरअंदाज करके इन्हें सम्मानजनक जिंदगी देने का संकल्प कैसे अमली जामा पहन सकता है।

बहरहाल वृंदावन में विधवाओं व बेसहारा महिलाओं के लिए आयोजित इस महोत्सव में करीब 700 महिलाओं ने शिरकत की जिसका आयोजन सुलभ इंटरनेशनल नामक संगठन ने किया था। गौरतलब है कि अगस्त 2012 में सर्वोच्च अदालत ने वृंदावन की महिलाओं की बदहाली संबंधी एक जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान कहा था कि दिल्ली में बैठकर वृंदावन की विधवाओं की समस्याओं का हल नहीं निकाला जा सकता। इस टिप्पणी का महत्व समझने के लिए थोड़ा अतीत में लौटना होगा। 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग ने वृंदावन और मथुरा की विधवाओं पर एक अध्ययन कराया जिसमें साफ जिक्र था कि वहां देह व्यापार का जो धंधा चल रहा था, पुलिस, प्रशासन, राजनेताओं व धर्म के बड़े लोगों को उसकी पूरी जानकारी थी। एक भुक्तभोगी का कहना था कि सभी मर्द हमारे शरीर के पीछे भागते हैं। 2001 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, महिला व बाल विकास विभाग उत्तर प्रदेश सरकार और पश्चिम बंगाल सरकार के अधिकारियों ने ऐसी महिलाओं की जिंदगी में सुधार लाने के मकसद से बैठक की। तत्कालीन जज जे एस वर्मा ने चिंता जतायी थी कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वृंदावन आने वाली इन महिलाओं के उत्थान के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए। देश में लोगों की मदद के लिए जो परोपकारी रुझान देखने को मिलता है, वही इनके लिए भी है। वृंदावन में ऐसी महिलाओं को बड़ी तादाद में आने से रोकना और उनके पुनर्वास कार्यक्रम व ऐसे कदमों पर विचार करना वक्त की मांग है, ताकि उनकी दुर्दशा में सुधार लाया जा सके। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की तत्कालीन सदस्य जस्टिस सुजाता वी मनोहर विधवाओं की समस्याओं को जानने के लिए वृंदावन गईं। उन्होंने इनको मुफ्त व स्वच्छ आवास, आर्थिक मदद और उचित स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराने की सिफारिश की थी। उनका सुझाव था कि इन सबको पेंशन मिलनी चाहिए, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वय सहायता समूह बनाए जाने चाहिए। ग्रुप कुकिंग के लिए एलपीजी कन्वेशन दिए जाने चाहिए और सम्मानजनक दाह संस्कार के लिए फंड का गठन किया जाना चाहिए। इसमें आवास की समस्या हल करने के मकसद से ग्रुप हाउसिंग व उचित सुरक्षा का सुझाव भी शामिल था।

● सवाल है जिस समाज में महिलाओं को कानूनन संपत्ति में तो हक मिला है पर व्यवहार में उसका पालन बहुत कम होता है, वहां सरकार बेसहरा विधवाओं को नाममात्र की पेंशन दे तो उनके पास विकल्प क्या बचते हैं! क्या उन्हें वृंदावन, काशी में बदहाली की जिंदगी जीने या अंतिम सांस तक तकलीफ भरी जिंदगी जीने के लिए ऐसे ही रहने दिया जाए

●उन्हें भिक्षावृत्ति से अलग करना, स्वच्छ व सुरक्षित आवास और मुफ्त मेडिकल सेवाएं उपलब्ध कराना सरकार की जिम्मेवारी है और सच पूछें तो इसे अच्छी तरह से निभाने में सरकार नाकामयाब रही है

एक दशक से पुराने इन सुझावों को सरकार ने कितनी गंभीरता से लिया, इसका खुलासा करीब तीन साल पहले एक अध्ययन ने किया। राष्ट्रीय महिला आयोग के इस अध्ययन के मुताबिक, करीब पांच हजार बुजुर्ग विधवाएं व बेसहारा महिलाएं तब पूरी तरह से तीर्थयात्रियों से मिलने वाली भीख पर आश्रित थीं। अधिकतर विधवाएं किराए पर रहती थीं और भीख मांग कर गुजारा करती थीं। आज की तारीख में भी अधिकतर की हालत में कोई गुणात्मक सुधार नहीं हुआ है। एक सरकारी अधिकारी ने बताया कि सरकार को ऐसी महिलाओं को भिक्षावृत्ति से अलग करने में अधिक सफलता नहीं मिली है। सफलता मिले भी कैसे? वृंदावन में कुल कितनी विधवाएं व बेसहारा महिलाएं हैं, इस बावत आंकड़ों में एकरूपता नहीं है।

सरकार के पास तर्क हैं कि सरकारी आश्रमों के अलावा जो विधवाएं किराए पर या अन्य आश्रमों में रहती हैं, उनकी गिनती आसान नहीं है। उनका आना-जाना लगा रहता है। बहरहाल, वृंदावन में विधवाओं और बेसहरा महिलाओं के लिए पांच सरकारी आश्रम हैं। 2012 में सरकार द्वारा कराये गये सर्वे में इन आश्रमों में 1739 जरूरतमंद महिलाएं रहती थीं जिन्हें सरकार हर महीने 300 रुपए पेंशन, 500 रुपए फूड मनी व 50 रुपये पॉकेट मनी देती है। सितम्बर 2012 से सुलभ इंटरनेशनल सरकारी आश्रमों में रहने वाली विधवाओं को मुफ्त मेडिकल सुविधा और सात सौ विधवाओं को एक हजार रुपए मासिक सहायता दे रहा है। बीते महीने से यह रकम दो हजार कर दी गई है।

उल्लेखनीय है कि सर्वोच्च अदालत ने अगस्त 2012 को सुलभ इंटरनेशनल को इन महिलाओं की मदद के लिए आगे आने को कहा था। इस गैर सरकारी संगठन की मदद करने की अपनी सीमाएं हो सकती हैं पर सरकारी पेंशन की रकम तो सभी को नियमित व पूरी मिलनी चाहिए। मगर ऐसा नहीं होता। शीर्ष अदालत के न्यायाधीशों ने जन सुनवाई याचिका के दौरान कहा- हमें दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि हो सकता है, वहां दलाल हों। हो सकता है विधवाओं के नाम का पैसा कोई और निकाल रहा हो। राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा सहायता कार्यक्रम, अंत्योदय योजना और फूड मनी योजना के तहत मिलने वाली वह छोटी रकम भी अक्सर उन तक नहीं पहुंच पाती है जिस पर उनका हक है। देश में करीब चार करोड़ विधवाएं हैं, जो कुल महिला आबादी का 10 प्रतिशत हैं। इनमें से 28 प्रतिशत ही पेंशन की पात्र हैं और इनमें से 11 प्रतिशत से भी कम इस हकदारी को पाती हैं। 2009 में 40 साल से ज्यादा उम्र की सभी विधवाओं को पेंशन योजना के दायरे में लाया गया था।

1995 में देश में वृद्धावस्था पेंशन योजना शुरू हुई, जिसके तहत 65 साल से अधिक उम्र के वृद्ध जो गरीब और संपत्तिहीन हैं व जिनकी देखभाल के लिए कोई वयस्क नहीं है, उन्हें दो सौ रुपए दिए जाने का प्रावधान किया गया। विधवाएं भी कहीं उनके लिए बनाई गई विधवा श्रेणी में तो कहीं वृद्धावस्था श्रेणी के तहत पेंशन राशि लेती हैं। केंद्र सरकार अब 18 साल से ज्यादा उम्र की विधवाओं को पेंशन योजना के दायरे में लाने को राजी है और यही नहीं, आधी विधवा महिलाएं, जिनके पति किन्हीं कारणों से लापता हैं, उनकी मृत्यु का कोई प्रमाण न होने की सूरत में उनकी पत्नियां न विधवा कहला सकती हैं न सधवा। ऐसे में वे सरकारी पेंशन से वंचित रह जाती हैं। ऐसे मामलों में गुमशुदगी के तीन साल बाद पेंशन का लाभ मिल सकेगा।

सरकार के कई मंत्रियों ने स्वीकारा है कि देश में महंगाई बढ़ी है पर सरकार ने पेंशन रकम में सिर्फ सौ रुपए बढ़ाना तय किया है यानी 200 से बढ़ाकर यह रकम 300 कर दी जाएगी जबकि मुद्रास्फीति के हिसाब से यह करीब 700 रुपए होनी चाहिए। सवाल है कि जिस समाज में महिलाओं को कानूनन संपत्ति में तो हक मिला है पर व्यवहार में उसका पालन बहुत कम होता है, वहां सरकार भी बेसहारा विधवाओं को नाममात्र की पेंशन दे तो उनके पास क्या विकल्प क्या बचते हैं? क्या उन्हें वृंदावन या काशी में बदहाली की जिंदगी जीने के लिए ऐसे ही रहने दिया जाए। उन्हें मंदिरों में चार घंटे भजन करने के महज पांच रुपए मिलते हैं, क्या यही उनकी नियति है।

उन्हें भिक्षावृत्ति से अलग करना, स्वच्छ व सुरक्षित आवास और मुफ्त मेडिकल सेवाएं उपलब्ध कराना सरकार की जिम्मेवारी है और सच पूछें तो इसे अच्छी तरह से निभाने में सरकार नाकामयाब रही है। बेशक होली महोत्सव में लाठी के सहारे शिरकत करने पहुंची कई बुजुर्ग विधवाओं के चेहरों पर उल्लास दिखा पर चिंताए अपनी जगह बरकरार हैं।

राष्ट्रीय सहारा 30.3.2013

समाज कल्याण

बुजुर्गों, अकेली महिलाओं और शारीरिक तौर पर अक्षम लोगों को जीवन चलाने के लिए सहारा देने की जरूरत।

सभी बेबस गरीब पेंशन के हकदार

हर्ष मंदर

डायरेक्टर, सेंटर फॉर इक्विटी स्टडीज

manderharsh@gmail.com

यदि सरकारी या संगठित निजी क्षेत्र में काम करने वाले लोग पेंशन को अपना अधिकार समझते हैं तो फिर वे लोग क्यों नहीं, जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी गरीबी, कड़ी मेहनत, उपेक्षा और कलंक के साथ गुजारी है?

मैं देश के हर हिस्से में स्थित गांवों में जाता हूं और पूछता हूं कि सबसे ज्यादा गरीब और असुरक्षित कौन है तो जवाब हर बार एक जैसा ही मिलता है। हर जगह वृद्ध, अकेली महिला और उन पर निर्भर परिवार के सदस्य तथा शारीरिक रूप से अक्षम लोगों का नाम सामने आता है। ये वे समूह हैं जो हर समय भुखमरी की कगार पर होते हैं। शहरी इलाकों की झुग्गियों में भी इन्हीं समूहों के नाम सामने आते हैं, हालांकि यहां बेघर और बिना अभिभावक के बच्चों का परिवार भी इस सूची में शामिल हो जाता है। उन लोगों के लिए जीवन और भी मुश्किल होता है, जो एक से ज्यादा कमज़ोरियों के शिकार हैं, आंखों से न देख सकने वाली अकेली बूढ़ी महिला या मानसिक रोग से पीड़ित बेघर अकेली महिला।

देश में सामाजिक सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम महात्मा गांधी नरेगा है, जिसके तहत हर ग्रामीण परिवार को साल में सौ दिन की मजदूरी की गारंटी दी गई है। लेकिन इनमें से अधिकांश समूह, जो भूखे रहने के खतरे से सबसे ज्यादा पीड़ित हैं, मजदूरी से भी वंचित हैं। इसकी वजह यह है कि वे उम्र, कमजोरी या बीमारी के चलते मनरेगा के निर्माण कार्यस्थलों पर कड़ा शारीरिक काम नहीं कर सकते। मनरेगा के तहत हो रहे निर्माण कार्यस्थलों पर मैं अक्सर झुकी कमर वाले वृद्धजनों को झूलते हाथों से गड्ढा खोदते या पत्थर तोड़ते देखता हूं। शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को काम करने की अनुमति विरले ही मिलती है। अकेली महिलाओं को काम नहीं मिलता, क्योंकि अधिकतर काम पारिवारिक समूहों द्वारा किए जाते हैं। शहरी इलाके तो इस योजना के दायरे से ही बाहर हैं।

जिन समूहों के बारे में सर्वविदित है कि वे सबसे ज्यादा गरीब हैं, वे सरकार की नीतियों और सार्वजनिक निवेश का हिस्सा भी नहीं हैं। संविधान के अनुच्छेद 41 के अनुसार सरकार अपनी आर्थिक क्षमताओं के अनुरूप बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी और शारीरिक अक्षमता के मामलों में काम, शिक्षा और सार्वजनिक सहयोग का अधिकार सुनिश्चित करने के लिए कारगर उपाय करेगी। लेकिन सरकार ने पहली बार वर्ष 1995 में वृद्धावस्था पेंशन योजना शुरू की। इसके तहत 65 वर्ष से ज्यादा उम्र के वृद्ध जो गरीब और संपत्तिहीन हैं तथा जिनकी देखरेख के लिए कोई वयस्क मौजूद नहीं है, उन्हें सिर्फ 200 रुपए दिए जाने का प्रावधान किया गया।

हमारे मैदानी अध्ययन साबित करते हैं कि इस छोटी रकम को हासिल करने में भी कड़ी शर्तों और भ्रष्ट व्यवस्था जैसी तमाम मुश्किलें थीं, फिर भी यह क्रई बार वृद्धजनों के जीवन और मृत्यु के बीच फर्क के रूप में सामने आईं। ये वो लोग थे, जिनके पास पेट भरने के लिए अंतिम क्षण तक भीख मांगने के सिवा और कोई विकल्प नहीं था। क़ई राज्य सरकारों ने केंद्र द्वारा दी जा रही राशि में अपनी ओर से इजाफा कर दिया तो कुछ ने ज्यादा से ज्यादा वृद्धजनों को इसके दायरे में लाने की व्यवस्था की। वर्ष 2007 में केंद्र सरकार ने भी न्यूनतम उम्र सीमा 60 वर्ष कर दी और उन सभी लोगों को इसका फायदा देना शुरू किया, जो आधिकारिक रूप से गरीबी रेखा के नीचे थे। 2009 में 40 वर्ष से ज्यादा उम्र की सभी विधवाओं और शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को भी पेंशन स्कीम के दायरे में लाया गया, लेकिन आधिकारिक गरीब की शर्त इसके साथ फिर भी जुड़ी रही।

देश की राजधानी दिल्ली में जंतर-मंतर पर पिछले कुछ महीनों से कुछ अलग तरह के लोगों का जमावड़ा गाहे-बगाहे देखने को मिला है। इनमें कमजोर वृद्ध, अकेली महिलाएं और कुछ अशक्तों

के संगठन शामिल हैं। पेंशन परिषद के बैनर तले ये लोग सभी के लिए पेंशन और उसकी रकम बढ़ाने की मांग कर रहे हैं। केंद्र सरकार सामाजिक सुरक्षा से संबंधित सभी राष्ट्रीय कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए तैयार हुई और इसके लिए बनी कमेटी का मैं भी सदस्य रहा। कमेटी की रिपोर्ट में कई अच्छी बातें हैं, खासतौर पर जरूरतमंद अकेली महिलाओं की नई श्रेणियों की पहचान और कम अक्षम लोगों की जरूरतों को समझने के मामलों में, लेकिन इसके दायरे और पेंशन के तहत मिलने वाली राशि को बढ़ाने के नजरिये से देखें तो यह उम्मीदों के अनुरूप नहीं है। इतना ही नहीं, देश में सामाजिक सहयोग की अवधारणा में मूलभूत बदलाव की वर्षों पुरानी मांग भी यह रिपोर्ट पूरी नहीं करती।

लेकिन पहले चर्चा अच्छी बातों की। केंद्र सरकार वृद्ध महिलाओं के अलावा अलग-अलग श्रेणियों की अकेली महिलाओं की जरूरतों को समझने को तैयार है। विधवाओं को जिस तरह परिवार और समाज में भेदभावों का सामना करना पड़ता है, उसे देखते हुए 18 वर्ष से ज्यादा उम्र की सभी विधवाओं को पेंशन योजना के दायरे में लाया जाएगा। पति से अलग रह रही, तलाकशुदा या शादी नहीं करने वाली महिलाओं को भी पहली बार इस योजना के दायरे में लाया जाएगा। आधी विधवा महिलाएं, जिनके पति सुरक्षा बलों द्वारा गायब कर दिए गए हैं, लेकिन उनकी मृत्यु का कोई प्रमाण नहीं होता, को न तो विधवा माना जाता है और न ही विवाहित। ऐसे मामलों में गुमशुदा होने के तीन साल बाद महिलाओं को पेंशन का लाभ मिल सकेगा। शारीरिक रूप से 40 प्रतिशत से ज्यादा अक्षम हर उम्र के लोगों को भी इसका फायदा मिलेगा।

हालांकि पेंशन के रूप में दी जाने वाली रकम 300 रुपए निर्धारित की गई है, जो काफी कम है। 1995 में यह रकम 200 रुपए तय की गई थी। यदि मुद्रास्फीति के हिसाब से आकलन करें तो अब यह करीब 700 रुपए होगी। लेकिन यदि हम इसे न्यूनतम मजदूरी से जोड़कर देखें, क्योंकि पेंशन न्यूनतम मजदूरी की एक-तिहाई होती है तो यह आंकड़ा लगभग 1320 रुपए होता है।

इससे भी ज्यादा चिंता की बात यह है कि प्रस्तावों में बीपीएल को आधार बनाया गया है। गरीबी रेखा की आधिकारिक सीमा बिना सोचे-समझे तय की जाती है और खुद सरकारी रिपोर्ट ही बताती हैं कि वास्तविक गरीबों को प्रशासन द्वारा गरीब मानने के आसार कम ही होते हैं। इसे देखते हुए जरूरी है कि बीपीएल जैसी शर्तों को हटाया जाए और घोषित अमीरों को छोड़कर हर उम्र के वृद्धजनों, अकेली महिलाओं और शारीरिक अक्षमता के शिकार लोगों को पेंशन स्कीम के दायरे में लाया जाए। पेंशन परिषद का कहना सही है कि यह भीख नहीं, बल्कि समान अधिकारों और समान इज्जत की मांग है। यदि सरकारी या संगठित निजी क्षेत्र में काम करने वाले लोग पेंशन को अपना अधिकार समझते हैं तो फिर वे लोग क्यों नहीं, जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी गरीबी, अनिश्चितता, कड़ी मेहनत, उपेक्षा और कलंक के साथ गुजारी है?

दैनिक भास्कर 23.3.2013

रेप विरोधी कानून में जो नया जुड़ा

केंद्र सरकार ने बजट सत्र का इंतजार किए बिना ही रेप मामले में जस्टिस जेएस वर्मा समिति की सिफारिशों के मद्देनजर एक अध्यादेश को मंजूरी दे दी। अध्यादेश पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होते ही रेप कानून में महत्वपूर्ण बदलाव हो जाएंगे। हां, इस पर छह महीने के भीतर संसद की मुहर लगनी जरूरी होगी-

- रेपिस्ट को मौत की सजा, अगर हादसे की वजह से पीड़ित वेजीटेटिव अवस्था (निष्क्रिय अवस्था या क्रियाहीन अवस्था) में चला जाए। अरुणा शानबाग जैसा मामला इसके तहत आ सकता है। अरुणा शानबाग वह नर्स है जिसका कई वर्ष पहले रेप किया गया था। वह तब से ही वेजीटेटिव अवस्था में है।
- रेप के बाद अगर पीड़ित की मौत हो जाती है तो अभियुक्त के ऊपर रेप और हत्या का मुकदमा चलेगा। इसमें दुर्लभ से दुर्लभतम मामले में सजा-ए-मौत का प्रावधान किया गया है। दिल्ली गैंगरेप के बाद इस तरह के प्रावधान की बहस चली थी।
- नृशंस रेप या गैंगरेप मामले में जिसमें पीड़ित की मौत नहीं हो रेपिस्ट को 20 साल से लेकर उम्रकैद तक की सजा का प्रावधान किया गया है।
- कानून की किताब में अब ' रेप' की जगह ' सेक्सुअल असाल्ट' यानी 'यौन हमला' शब्द का इस्तेमाल होगा और इसकी परिभाषा को और व्यापक बनाया गया है। इसमें लिंगभेद नहीं होगा।
- तेजाब से हमले की शिकार अगर अपनी आत्मरक्षा में हमलावर पर हमला बोलती है और इसमें तेजाब से हमला करने वाले की मौत हो जाती है तो महिला या लड़की को माफी दिए जाने का प्रावधान किया गया है।
- तेजाब हमले का दोषी पाए गए व्यक्ति को पीड़ित महिला या लड़की को 10 लाख रुपए हर्जाना देना तय किया गया है। इसमें दस साल की कैद का भी प्रावधान किया गया है।
- किसी महिला को उसकी अनुमति के बगैर छूना, उसके प्रति उत्तेजनापूर्ण शब्दों का इस्तेमाल, ई-मेल पर निगरानी रखना, उत्तेजनापूर्ण हरकत या इशारा और लोगों की मौजूदगी में उसके प्रति अपमानजनक प्रयास करने वाले को एक से पांच साल तक की कैद की सजा।
- किसी महिला का पीछा करना, उसे निर्वस्त्र करना, उसका ध्यान खींचने के लिए विशेष हरकतें करने पर कम से कम सात साल की सजा होगी।
- 18 वर्ष से कम आयु की पीड़ित को बयान दर्ज कराते समय आरोपी का समना नहीं करना होगा।
- 18 वर्ष से कम, 65 वर्ष से अधिक आयु वाले और अपंग पीड़ित को थाने आने की जरूरत नहीं होगी।
- बचाव पक्ष का वकील पीड़ित के चरित्र पर न तो सवाल उठा पाएगा और न ही इससे जुड़े सवाल कर पाएगा।
- रेप के मामलों में पुलिस या सरकारी कर्मचारियों के शामिल होने पर गंभीर सजा का प्रावधान।

कुछ गंभीर मामले खारिज

- वैवाहिक दशा में रेप के मामले को अपराध की श्रेणी में नहीं रखा गया। इसमें एक-दूसरे से अलग रहने के दौरान जबरन यौन संबंध स्थापित करना भी शामिल है।
- सुरक्षा बलों द्वारा किए गए रेप मामलों की सुनवाई सामान्य अदालत में करने का प्रस्ताव नहीं माना। रेप मामलों में भी इनके खिलाफ कोर्ट मार्शल की कार्रवाई ही होगी।
- अपनी कमान में रह रहे सुरक्षा बलों द्वारा रेप मामलों को नहीं रोक पाने के लिए वरिष्ठ अधिकारी को जिम्मेदार ठहराने की बात भी कैबिनेट ने नहीं मानी।
- सहमति से यौन संबंध बनाने की आयुसीमा 18 से 16 वर्ष करने की बात भी सरकार ने नहीं मानी।

राष्ट्रीय सहारा 16.3.2013

सिर्फ कानून से समाधान नहीं

प्रकाश सिंह

लेखक सीमा सुरक्षा बल के पूर्व महानिदेशक हैं।

जस्टिस वर्मा ने महिलाओं के विरुद्ध अपराध को रोकने के लिए पुलिस और थानों को कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। जैसे महिलाओं को थाने में शिकायत करने की सुविधा हो। हर थाने में वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध करवाए जाएं। इसी तरह हर क्षेत्र और जनपद के थानों में फोरेंसिक सपोर्ट सिस्टम होने चाहिए। पुलिस को स्वायत्त होना चाहिए। उसकी जांच पर किसी भी प्रकार का राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश जेएस वर्मा की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय समिति की रिपोर्ट एक प्रशंसनीय रिपोर्ट है। थोड़े समय में उन्होंने महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों की विस्तृत व्याख्या की है। इसके लिए तीनों सदस्यों (जेएस वर्मा, हिप्र की पूर्व मुख्य न्यायाधीश लीला सेठ और पूर्व सोलिसिटर जनरल गोपाल सुब्रमण्यम) की तारीफ करनी होगी। इस रिपोर्ट को पढ़ते हुए हमें खासतौर पर यह ध्यान रखना होगा कि देश में महिलाओं की असुरक्षा का जो वातावरण है, उसका मुख्य कारण वर्मा समिति की रिपोर्ट के अनुसार प्रशासकीय विफलता है। उन्होंने विशेष जोर देकर कहा कि इस प्रशासकीय विफलता की वजह से पूरे देश में एक ऐसा माहौल बन गया है, जिसके कारण महिलाएं आज खुद को असुरक्षित महसूस कर रही हैं। रिपोर्ट में उन्होंने महिलाओं के खिलाफ अपराध को नए सिरे से परिभाषित करने की कोशिश की है। महिलाओं का पीछा करना, तेजाब फेंकना, कामुक निगाह से घूरना, उनकी मर्जी के खिलाफ उन्हें स्पर्श करना जैसी गतिविधियों को अपराध के दायरे में लाने की सिफारिश की गई है।

जस्टिस वर्मा की रिपोर्ट में अपराध की शिकार महिलाओं के मेडिकल ऑपरेशन के बारे में भी महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं। उन्होंने कहा है कि यदि कोई महिला किसी तरह की हिंसा की शिकार होती है तो उसे तत्काल मेडिकल सुविधाएं मुहैया करवाई जानी चाहिए ताकि जल्दी से जल्दी पीड़ित महिला का इलाज हो सके। इसके अलावा पुलिस सुधार पर भी जस्टिस वर्मा की रिपोर्ट में एक पूरा अध्याय है। उन्होंने पुलिस सुधार के बारे में सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों का केंद्र और राज्य सरकार दोनों को अनुपालन करने का निर्देश दिया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि जब तक पुलिस व्यवस्था में आमूलचूल तब्दीली नहीं आएगी, तब तक महिलाएं पूरी तरह सुरक्षित नहीं होंगी। जस्टिस वर्मा ने महिलाओं के विरुद्ध अपराध को रोकने के लिए पुलिस और थानों को कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। जैसे महिलाओं को थाने में शिकायत करने की सुविधा हो। हर थाने में वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध करवाए जाएं। इसी तरह हर क्षेत्र और जनपद के थानों में फोरेंसिक सपोर्ट सिस्टम होने चाहिए। फिर उन्होंने कहा कि पुलिस को स्वायत्त होना चाहिए। पुलिस और उसकी जांच पर किसी भी प्रकार का राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

रिपोर्ट में एक और अच्छी बात कही गई है जो चुनाव प्रक्रिया में सुधार के लिए जरूरी है। जस्टिस वर्मा ने कहा है कि जनप्रतिनिधि कानून में बदलाव किया जाना चाहिए। और चुनाव प्रक्रिया से अपराधियों को बाहर किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि चुनाव लड़ने के लिए नामांकन करने वाले उम्मीदवारों के हलफनामे की कैग द्वारा जांच करवाई जानी चाहिए और हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार के प्रमाणपत्र के बाद ही नेताओं को चुनाव लड़ने दिया जाना चाहिए। रिपोर्ट में उम्मीदवारों की संपत्ति के ब्योरे की भी जांच कराए जाने की सिफारिश की गई है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो जस्टिस वर्मा की रिपोर्ट के कुछ बिंदुओं पर लोग बहस कर सकते हैं। जैसे बलात्कार के बाद जघन्य हत्या पर पापुलर मांग थी कि फांसी का प्रावधान होना चाहिए। लेकिन रिपोर्ट में इसे टाल दिया गया है। रिपोर्ट के इस पहलू को लेकर कुछ लोग नाराज हो सकते हैं। दूसरे कुछ लोग जुवेनाइल एज (18 साल) पर भी नाराजगी जता सकते हैं। क्योंकि कुछ लोगों की मांग थी कि इसे 18 साल से घटाकर 16 साल कर दिया जाए। कुछ लोग कह सकते हैं कि उम्र चाहे जो भी हो अपराधी को उसके अपराध की सजा मिलनी ही चाहिए।

जस्टिस वर्मा की रिपोर्ट के एक और बिंदु पर विवाद संभव है - कमांड रिसपांसिबिलिटी। यदि कोई कनिष्ठ कर्मचारी अपराध करता है तो उसके लिए वरिष्ठों को जिम्मेदार ठहराना तर्कसंगत नहीं है। यदि सीनियर अफसर की जानकारी में जूनियर अफसर किसी महिला के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है, तब उसके सीनियर अफसर को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। लेकिन उसके संज्ञान के बिना यदि किसी जूनियर अफसर द्वारा कोई आपराधिक घटना को अंजाम दिया जाता है तो उसके लिए सीनियर अफसर को इस मामले में घसीटना मुझे न्यायसंगत नहीं लगता। इसी तरह, रिपोर्ट में उन पुलिस अधिकारियों के लिए कड़े दंड का प्रावधान करने की सिफारिश की गई है जो शिकायत के बाद भी बलात्कार या यौन उत्पीड़न का मामला दर्ज नहीं करते। दरअसल, थाने में आपराधिक मामलों के पंजीकरण का मामला सरल नहीं है। कई बार राजनीतिक हस्तक्षेप की वजह से मामले दर्ज नहीं हो पाते। वैसे मामले में पुलिस क्या करेगी, जब मायावती मुख्यमंत्री की कुर्सी से यह फरमान जारी करती हैं कि रातोंरात 75 प्रतिशत अपराध कम होने चाहिए।

जहां तक इस बहुप्रतीक्षित रिपोर्ट को कानूनी रूप देने का सवाल है इस पर सरकार को जल्द से जल्द कार्रवाई करनी पड़ेगी। इसे सरकार ठंडे बस्ते में नहीं डाल पाएगी। क्योंकि पिछले दिसंबर की घटना के बाद देशभर में फैले तीव्र जनाक्रोश के बाद सरकार ने इस कमेटी का गठन किया था। इस रिपोर्ट को अभी तक बहुत से लोगों ने पढ़ा नहीं है, अभी इस पर चर्चा होना बाकी है। लोग इसके विभिन्न बिंदुओं पर बहस करेंगे। इसलिए सरकार इस पर कितनी कार्रवाई करती है यह आने वाले समय में ही पता चलेगा। लेकिन सरकार को महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध से संबंधित कानूनों में संशोधन लाना ही होगा।

दरअसल, महिलाओं के प्रति अपराध को रोकने के लिए आज एक कड़े कानून की जरूरत है लेकिन महिलाओं से संबंधित अपराध पर पुनर्विचार करने की भी जरूरत है। समाज में जो बदलाव हो रहा है, उसमें कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक चीजें भी हो रही हैं। हमें इसे फिर से देखने की जरूरत है। अपराध से निबटना एक बात है और अपराध क्यों हो रहे हैं उस पर चिंतन करना दूसरी बात। समाजशास्त्रियों को इस विषय पर सोचना चाहिए। मूल्यों में बदलाव, उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रचार प्रसार, शराब के इस्तेमाल में बढ़ोतरी आदि भी महिलाओं के विरुद्ध अपराध में वृद्धि के कारण हैं। इसी तरह समाज में पाश्चात्य मूल्यों का जो अंधानुकरण हो रहा है, उसमें औरतों को सिर्फ मांस का एक टुकड़ा समझा जा रहा है। इसलिए हमें कानून कड़े करने के साथ साथ ये अपराध क्यों हो रहे हैं, उन्हें भी सामाजिक स्तर पर देखना होगा। मैं, पाश्चात्य संस्कृति के विरुद्ध नहीं हूं लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के कुछ मूल्य ऐसे हैं, जिससे हमारे देश की महिलाओं के विरुद्ध अपराध बढ़े हैं। इसी तरह मीडिया की भूमिका को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

सिर्फ पुलिस व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराकर बचा नहीं जा सकता। मीडिया को भी अपने गिरेबान में देखना चाहिए। देश में जो सामाजिक बदलाव हो रहे हैं, उनमें महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए हमें महिलाओं की सुरक्षा के बारे में समग्रता से सोचना पड़ेगा।

दैनिक भास्कर 25.1.2013

उचित प्रावधानों की अनुचित आलोचना

महिला सुरक्षा

कमलेश जैन

कई महिला संगठनों और महिला व बाल विकास मंत्री कृष्णा तीरथ की असहमति के बावजूद बृहस्पतिवार को कैबिनेट ने लड़कियों के लिए शारीरिक संबंधों वाले प्रावधान में सहमति की उम्र 18 वर्ष से घटाकर 16 वर्ष करने का निर्णय लिया है। इसके साथ संशोधित क्रिमिनल लॉ (एमेंडमेंट) बिल-2013 अब संसद के सामने होगा। इस विषय पर सारे देश में बहस जोरों पर है। खासकर इस बात पर कि प्रोटेक्शन फ्राम सेक्सुअल ऑफिंसेज एक्ट-2012 (अब से पोक्सो) में किशोर लड़कियों की यौन सहमति की उम्र को 18 वर्ष से घटाकर भारतीय दंड संहिता की धारा 375 (बलात्कार) में 16 वर्ष कर दिया गया है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 375 (6) में लड़कियों की यौन सहमति की उम्र सदा से ही 16 वर्ष रही है। वहां कोई बदलाव नहीं है। पोक्सो एक्ट में अवश्य सहमति की उम्र 18 वर्ष रही, जिसे अब 16 वर्ष मान लिया गया है। कहा जा रहा है कि दोनों कानूनों में यह फर्क क्यों? यहां समझना होगा कि 'पोक्सो' का उद्देश्य बच्चों को यौन आघात से सुरक्षित करना है। कोई घर में या बाहर उनके साथ छेड़छाड़ करता है, उन्हें यौनिक रूप से तंग करता है, जो बच्चे अकेले हैं और बड़ों के द्वारा प्रताड़ित हैं- उन्हें हर तरह की सुरक्षा देना है, विशेषकर शारीरिक यौन शोषण से। जबकि भारतीय दंड संहिता एक विशुद्ध अपराध कानून है, जहां धारा 375 में बलात्कार की ही बात की जाती है और उससे जनित अपराध तथा सजा की व्याख्या होती है। दोनों कानूनों का उद्देश्य अलग है, पर जहां तक स्वेच्छा से यौन संबंध बनाने तथा ऐसे संबंधों की सहमति देने की बात है तो वहां किशोरों को इस नैसर्गिक आकर्षण से वैसे ही नहीं रोका जा सकता है जैसे उन्हें खाना खाने या पानी पीने। यह इच्छा उम्र तथा समय के साथ स्वतः जागृत होती है- किसी शिक्षा को प्रदान करने या कानून के या समाज के रोक लगाने से नहीं। कुछ लोगों को उस उम्र में यौन संबंध सहमति से बनाने में रोका नहीं जा सकता।

आज के दौर में बच्चे खान-पान, जागरूकता, इंटरनेट, सिनेमा आदि की वजह से पहले की अपेक्षा जल्दी परिपक्व हो रहे हैं। 16 वर्ष की उम्र ऐसी ही उम्र है जिसमें किशोर

- महिलाओं के साथ बलात्कार और अन्य अपराधों के लिए कड़े दंड का प्रावधान करने वाले विधेयक को कैबिनेट की मंजूरी प्राप्त हो गई है। विधेयक में तेजाब से हमला, पीछा करना, घूरना और छिपकर ताकझांक करने को आपराधिक कृत्य माना गया है, जिसमें कड़ी सजाओं का प्रावधान है
- उद्देश्य केवल एक है। वह यह कि स्त्री कोई खिलौना नहीं है जिसे पुरुष जब चाहे, जहां चाहे खेले और रौंद दे। वह भी एक इंसान है। उसके सारे अधिकार- स्वाभिमान, अपने शरीर पर अपना संपूर्ण अधिकार- वैसे ही है, जैसे किसी पुरुष के हैं

बिना किसी अपराध भावना के करीब आ जाते हैं। ऐसे में 16 वर्ष की लड़की की सहमति से बनाए गए यौन संबंध में लड़की को छोड़ दिया जाए और लड़के को जेल भेजा जाए तो यह गलत होगा। हां, जहां तक जोर-जबरदस्ती की बात है तो वहां तो किसी भी उम्र की महिला के साथ किया गया कृत्य अपराध ही है। अतः इन दोनों कानूनों में आपसी सहमति से संबंध की उम्र 16 वर्ष सही है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है कि 'पोक्सो' के तहज आए बच्चे 18 वर्ष में ही परिपक्व होंगे और भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अंतर्गत आए बच्चे 16 वर्ष की उम्र में परिपक्व होंगे। दोनों ही जगह बच्चों का शारीरिक, मानसिक तथा यौनिक विकास एक-सा होगा।

कहा यह भी जा रहा है कि शहरों की अपेक्षा गांव के बच्चे 16 वर्ष में कम परिपक्व होंगे। यह आज की परिस्थिति में एक गलत आकलन होगा। कारण, गांव में भी खान-पान, अनेक बच्चों का कच्ची उम्र में विवाह (बाल विवाह भी), टीवी और फिल्मों का प्रसार, समय व्यतीत करने की समस्या जैसी स्थितियां किशोरों को जल्द ही परिपक्व बना देती हैं। इस रूप में वे भी शहर के किशोरों की तरह यौन संबंध बनाने के लिए लालायित हो सकते हैं। ऐसे में दोनों जगहों पर कानून में उम्र का एक होना ठीक ही है।

एक बहस यह भी हो रही है कि शादी, ड्राइविंग, मतदान, शराब-सिगरेट पीने आदि की उम्र जब 18 वर्ष या इससे अधिक है तो सहमति से यौन संबंध बनाने की उम्र 16 वर्ष क्यों? ऐसी तुलना करना गलत होगा। शादी करने, शराब-सिगरेट पीने या वोट देने की उम्र 18 वर्ष तय करने या इसे 19-20-21 तय कर देने से कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई चाहे तो अपने आपको इतनी उम्र तक इन कार्यों से अपने को रोके रख सकता है। यहां किसी काम को करना, किसी सुविधा को प्राप्त करना या न करना अपने हाथ में है, पर शारीरिक यौन परिपक्वता को रोक पाना अपने वश की बात नहीं है। यहां परिपक्वता आते ही ऐसी भूल होना स्वाभाविक है और इस भूल को अपराध बना देना ठीक नहीं है। जोर-जबरदस्ती की बात अलग है। कहा जा रहा है कि पोक्सो 2012 में ही बना तो इतनी जल्दी क्यों बदला जा रहा है। वास्तव में 2012 के एक्ट में ही खामियां थीं और उन्हें जितनी जल्दी सुधार लिया जाए, उतना अच्छा है। इसी तरह जो लोग यह कह रहे हैं कि शादी 18 में, तो 16 से 18 के बीच यौन संबंध को कानूनी स्वीकृति क्यों? यहां स्वीकृति किसी को नहीं है, फिर विवाह करना बहुत सारी जिम्मेदारियों से भरी बात है। जिसके लिए 16 वर्ष की उम्र सही नहीं होगी, पर सहमति के लिए 16 वर्ष की उम्र भूल की उम्र तो हो सकती है पर अपराध की कतई नहीं।

पिछले डेढ़ साल से मानव संसाधन मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय में यही बहस चलती रही है कि क्यों नहीं हर जगह बच्चों की उम्र 18 वर्ष ही रखी जाए, पर यह सही नहीं है। मानव संसाधन विभाग की स्टैंडिंग कमेटी यह भी कह रही है कि पोक्सो से सहमति की उम्र के प्रावधान को बाहर ही कर दिया जाए। कारण यह यूएनसीआरसी 1989/1992 (यूनाइटेड नेशंस चाइल्ड राइट्स कंवेंशन) तथा जेजे (जुवेनाइल जस्टिस) एक्ट 2000/2006 के खिलाफ होगा, जहां किशोर की उम्र 18 वर्ष है। यहां यह कहना आवश्यक होगा कि यूएनसीआरसी 1989 काफी पुराना है और पिछले 24 वर्षों में हर देश में बच्चों के मानसिक, शारीरिक, यौनिक स्वास्थ्य में काफी बड़ा बदलाव आया है जिसके तहत बहुत से देशों में 16 से 18 वर्ष की उम्र में जघन्य अपराधों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है; अतः जेजे एक्ट में भी किशोर की उम्र भारत में 16 वर्ष ही होनी चाहिए, जैसे कि कई राष्ट्रों में की गई है। जेजे एक्ट में एक किशोर अपराधी की उम्र 22 अगस्त, 2006 से (एक्ट 33 ऑफ 2006 द्वारा) ही 16 वर्ष से 18 वर्ष कर दी गई, जो एक बड़ी भूल थी। यह बढ़ोत्तरी उस समय की गई जब बच्चे पहले से ज्यादा जल्दी युवावस्था प्राप्त करने लगे थे।

बिल में बलात्कार शब्द वापस लाया जा रहा है। बलात्कार, स्टाकिंग (यौन हमला करने की नीयत से पीछा करना, जो लड़की के मन में अपने शरीर पर आक्रमण का भय पैदा कर दे), वोयेरिज्म (सार्वजनिक जगहों पर, बाथरूम, माल्स चेंजिंग रूम आदि में ताक झांक, वीडियो और कहीं सीसीटीवी कैमरा या मोबाइल से तस्वीर खींचना- जिसका उद्देश्य यौन कुचेष्टा या परेशान करना हो), या शारीरिक छेड़छाड़ या वैसी यौनिक कुचेष्टा जो अपमानित और परेशान करने वाली हो, को यौन अपराध माना गया है तथा इसके लिए कड़ी सजा का प्रावधान है।

महिलाओं के साथ बलात्कार और अन्य अपराधों के लिए कड़े दंड का प्रावधान करने वाले विधेयक को कैबिनेट की मंजूरी प्राप्त हो गई है। विधेयक में तेजाब से हमला, पीछा करना, घूरना और छिपकर ताक झांक करने को आपराधिक कृत्य माना गया है, जिसमें कड़ी सजाओं का प्रावधान है। कानूनों में इतने सारे बदलावों का उद्देश्य केवल एक है। वह यह कि स्त्री कोई खिलौना नहीं है जिसे पुरुष जब चाहे, जहां चाहे खेले और रौंद दे। वह भी एक इंसान है। उसके सारे अधिकार-स्वाभिमान, अपने शरीर पर अपना संपूर्ण अधिकार- वैसे ही है जैसे एक पुरुष का है। संविधान में स्त्री-पुरुष बराबर हैं। अब कोई पुरुष बिना स्त्री की इच्छा के उसे छू नहीं सकता है, उससे अभद्र बातें नहीं कर सकता है और उसके शरीर पर किसी प्रकार का प्रहार नहीं कर सकता। यह एक अपराध है, जिसे करने पर कड़ी सजा का प्रावधान है।

(लेखिका सुप्रीम कोर्ट में वरिष्ठ अधिवक्ता हैं। लेख में व्यक्त विचार उनके निजी हैं)

राष्ट्रीय सहारा 16.3.2013

नजरिया

उपेंद्र राय

और एक सशक्त कदम

नए साल में नई शुरुआत हुई है। केंद्रीय गृह मंत्रालय ने तय किया है दिल्ली के तमाम थानों में कम से कम नौ महिला पुलिसकर्मी होंगी। इनमें से कम से कम दो सब इंस्पेक्टर रैंक की होंगी और सात कांस्टेबल होंगी। दिल्ली में 166 थाने हैं और हर थाने में नौ महिला पुलिसकर्मी की नियुक्ति का मतलब हुआ कुल 1,494 महिला पुलिसकर्मी। वैसे तो दिल्ली पुलिस में 4,500 महिला पुलिसकर्मी कार्यरत हैं। लेकिन इनमें से दो से ढाई हजार महिलाएं डेस्क जॉब में हैं। ज्यादातर कॉल अटेंडैंट का काम करती हैं। कई ऐसे थाने हैं, जहां कोई भी महिला पुलिसकर्मी नहीं है। दिल्ली पुलिस चाहे तो तत्काल इस फैसले को अमल में लाया जा सकता है। वैसे केंद्रीय गृह मंत्रालय का आदेश है कि इस फैसले पर अमल के लिए महिलाओं को भर्ती करने की जरूरत पड़ती है तो वह भी किया जाए।

क्या इस फैसले से दिल्ली की सड़कों पर महिलाएं सुरक्षित होंगी? मेरे ख्याल से हाल के दिनों में जितने फैसले लिये गए हैं, उनमें सबसे अहम फैसला यही है। और इस फैसले पर अगर पूरे देश में अमल किया जाता है तो पुलिस का मानवीय चेहरा लोगों के सामने आ सकता है। दरअसल, हमारे देश में पुलिसिंग को पुरुषत्व से जोड़कर देखा जाता रहा है, जो जितना दबंग है, उसे उतना ही सफल पुलिस अफसर माना जाता है। फिल्म 'दबंग' की सफलता के पीछे शायद इसी दबंग इमेज का हाथ रहा है।

लेकिन आधुनिक युग में पुलिसिंग दूसरी सर्विस की जैसी ही एक सर्विस है। दूसरी तरह की सेवा देने वालों में 'कस्टमर कम्स फर्स्ट' का एप्रोच रखा जाता है। इस बात का खास खयाल रखा जाता है कि ग्राहक की भावना को किसी हालत में ठेस नहीं पहुंचे। अगर कोई टेलीफोन कम्पनी से आपको फोन आए और वह आपसे बदतमीजी से बात करे तो आप तत्काल उस कम्पनी से नाता तोड़ लेंगे। उसी तरह, कोई कैटरर आपकी पार्टी में अच्छी सेवा नहीं देता है तो आगे से उसे आप हायर नहीं करते हैं। इन उदाहरणों के जरिये मेरे कहने का यह कतई मतलब नहीं है कि पुलिसिंग दूसरी सेवाओं जैसी ही है। लेकिन यह हमें मानना ही पड़ेगा कि पुलिसिंग में भी सेवा भाव की जरूरत है। पुलिस बल को भी जनता से दोस्ताना रवैया रखने की जरूरत है। पुलिस से डर उसे होना चाहिए जो कानून तोड़ता है। कानून का पालन करने वालों को पुलिसकर्मी से डर क्यों लगे? पुलिस बल का समाज से दोस्ताना रिश्ता हो, इसके लिए जरूरी है कि पूरे बल की छवि बदली जाए, पुलिसवालों को मानवीय संवदेना के साथ सहानुभूति रखने की ट्रेनिंग दी जाए। और यह ट्रेनिंग पुलिस स्टेशन पर हर दिन मिले तो सोने पर सुहागा।

मेरा मानना है कि मानवीय संवेदना के विकास में पुरुष और नारी का इनपुट जरूरी है। पूर्ण संवेदना में समाज के दोनों अंगों का इनपुट जरूरी है। दोनों धाराओं के मिलने से जो विचार बनता है, वही पूर्ण होता है। इसलिए देखा गया है कि जो बच्चे को-एड स्कूल में नहीं पढ़े होते हैं, उनका नजरिया अधूरा रह जाता है। उनकी संवेदना में कहीं कोई कमी रह जाती है। कुछ बच्चे अपने परिवार में या फिर अपने दोस्तों के बीच इस कमी को पूरा कर लेते हैं लेकिन कुछ एक की जिंदगी में यह अधूरापन हमेशा के लिए रह जाता है। इसलिए ऐसे स्कूलों को बनाया गया, जहां लड़के और लड़कियों को दाखिला मिले। कम्पनियों का इमोशनल कोशिएंट बढ़ाने के लिए और इसे ज्यादा कार्यकुशल बनाने के लिए इस बात का खास खयाल रखा जाता है कि वहां काम करने वालों में जेंडर बैलेंस सही रहे। विधानसभाओं और संसद में भी बैलेंस ठीक करने के लिए महिलाओं को रिजर्वेशन देने की बात हो रही है। इन सबके पीछे एक ही लॉजिक है-हर छोटी-बड़ी संस्था को स्वस्थ बनाने के लिए उन्हें समाज का आईना बनाया जाए।

पुलिस फोर्स में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के कई फायदे होंगे। अभी थानों में एक खास तरह की भाषा का प्रयोग होता है, जिसमें गालियों का इनपुट काफी होता है। माहौल को डरावना बना कर रखा जाता है। उससे आसपास का माहौल भी सहमा रहता है। सामाजिक रूप से भद्र व्यवहार पर बैन होता है। हंसी-मजाक को बुरा माना जाता है।

> हाल के दिनों में जितने फैसले लिये गए हैं उनमें सबसे अहम फैसला यही है-दिल्ली के हरेक थानों में नौ महिला पुलिसकर्मियों की नियुक्ति। और इस फैसले पर अगर पूरे देश में अमल किया जाता है तो पुलिस का मानवीय चेहरा लोगों के सामने आ सकता है। लेकिन एक और पहलू है, जिस पर हमें गौर करना है। यौन शोषण का दुर्भाग्य से कोई महिला शिकार हो जाती है तो उसके रिलिफ और रिहेबिलिटेशन के लिए हमें सोचना होगा। ऐसा हुआ तो पीड़िता को सामान्य होने में सकारात्मक माहौल मिलेगा

थानों में महिलाओं के रहने से गालियां कम होंगी, नॉर्मल व्यवहार की वापसी होगी, पुरुष पुलिसकर्मियों को सामाजिक मर्यादाओं का खयाल रखना होगा। इससे थानों पर से 'डर लगता है' का टैग हटेगा और लोग अपनी शिकायत लेकर वहां जाने से घबराएंगे नहीं। इससे पुलिस की छवि सुधरेगी और पुलिसिंग बेहतर होगी।

लेकिन क्या पुलिस फोर्स में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने भर से महिलाओं की सुरक्षा बढ़ जाएगी? सिर्फ इतना भर से काम नहीं चलेगा। लेकिन यह अच्छी शुरुआत है। इसके साथ-साथ और भी कई कदम उठाने होंगे। हाल के दिनों में कानून में बदलाव की खूब बातें हुई हैं। बलात्कारियों के लिए फांसी की सजा की मांग हो रही है। फास्ट ट्रैक कोर्ट की बात हो रही है। बलात्कारियों के लिए कैमिकल कास्ट्रेशन की भी बात हो रही है। कानून में बदलाव के लिए सुप्रीम कोर्ट के पूर्व चीफ जस्टिस जेएस वर्मा के नेतृत्व में एक कमेटी बनी है, जिसका सुझाव इसी महीने आने वाला है। कमेटी के सुझाव के बाद कानूनी पहलुओं में तो बदलाव हो ही जाएंगे। लेकिन एक और पहलू है, जिस पर हमें गौर करना है। यौन शोषण का दुर्भाग्य से कोई महिला शिकार हो जाती है तो उसके रिलिफ और रिहेबिलिटेशन के लिए हमें सोचना होगा। उसके लिए सरकार की ओर से कुछ होता नहीं है और समाज उससे अछूत की तरह पेश आने लगता है। इन मानसिकता को तत्काल बदलना होगा। अगर समाज का नजरिया बदलता है तो पीड़िता का जख्म भरने में समाज अपनी सही भूमिका निभा रहा होगा और पीड़िता को भी वापस सामान्य होने का सकारात्मक माहौल मिलेगा।

महिलाओं की सुरक्षा के लिए मोरल पुलिस की फौज को भी तत्काल खत्म करना होगा। महिलाएं क्या पहनती हैं, क्या पढ़ती हैं, किस कॉलेज में जाती हैं या किस समय में कहां घूमने जाती हैं-इन मामलों पर प्रवचन तत्काल बंद हो जाना चाहिए। इस तरह के प्रवचन महिलाओं को डराते हैं, उन्हें कमजोर करते हैं। समय की मांग है कि नैतिकता की शिक्षा देने वालों का मुंह बंद करके ऐसे काम किए जाएं जिनसे महिलाओं का सशक्तीकरण हो।

(लेखक सहारा न्यूज नेटवर्क के एडिटर एवं न्यूज डायरेक्टर हैं)

राष्ट्रीय सहारा 6.1.2013

पुलिस सुधार का एफआईआर

विश्लेषण

मुकेश कुमार सिंह

देश एक कोलाहल में डूबा है। इस कोलाहल में नई दिल्ली की हालिया घटना के पीछे की वजहों को दूर करने को लेकर कई तरह की बातें हो रही है। यहां यह बात समझने की है कि तमाम अपराधों की तरह महिलाओं के साथ होने वाले हादसों के पीछे भी सामाजिक और प्रशासनिक दोनों पहलू हैं। प्रशासनिक तरीकों से ही सामाजिक बदलाव पुख्ता बनते हैं लेकिन देखत-देखते भारत के प्रशासनिक निक्कमेपन के बादलों ने पूरे समाज को ढक लिया। इसकी सही वजह को समझने तक हालात जस के तस ही रहेंगे। सबसे पहले समझना होगा कि पुलिस ही हुकूमत का बुनियादी चेहरा है। कहीं की भी पुलिस हो, उसका बुनियादी चेहरा सबसे निचले स्तर का कर्मचारी यानी सिपाही का ही होता है। आम आदमी का सबसे ज्यादा वास्ता उसी से पड़ता है। आमतौर पर सिपाही के अफसरों को इस बात की कोई परवाह नहीं होती कि उनका मातहत किस हाल में जीता है, अनुशासन के भारी दबाव के बावजूद क्यों वो वैसे काम नहीं कर पाता, जैसा उससे अपेक्षित है? इसी बुनियादी सवाल के जबाव से पूरी कानून-व्यवस्था का रिपोर्ट कार्ड बनता है।

अपराध को रोकने, अपराधी को पकड़ने और पीड़ितों को इंसाफ दिलाने का असली दारोमदार सिपाही पर ही होता है। हजारों कानूनों को लागू करने का जिम्मा इसी कमजोर तबके के कंधों पर होता है। पर सिपाही के पास किसी अपराधी को पकड़कर थाने ले जाने के अलावा और किसी भी कार्रवाई का अधिकार नहीं होता। फर्ज सारे इसके, ताकत कुछ भी नहीं। सड़क पर वह सीटी बजाता रहेगा लेकिन अगर कोई उसकी न सुने तो वह उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता।

किसी भी दिल दहला देने वाले हादसे के बाद तमाम बातें जनमानस के सामने दोहराई जाती हैं। फिर भी कहीं कोई टिकाऊ बदलाव क्यों नहीं दिखता? बातें चाहे पुलिस को राजनीतिक शिकंजे से बाहर निकालने की हो, नेशनल लिटिगेशन पॉलिसी की, मॉडर्न पुलिस कोड की, पुलिस यूनिवर्सिटी बनाने की, अदालतों में लगने वाले लंबे वक्त की, गवाहों और पीड़ितों के साथ होने वाले गैरवाजिब बर्ताव की, अभियोजन-महानिदेशालय बनाने की, या फिर

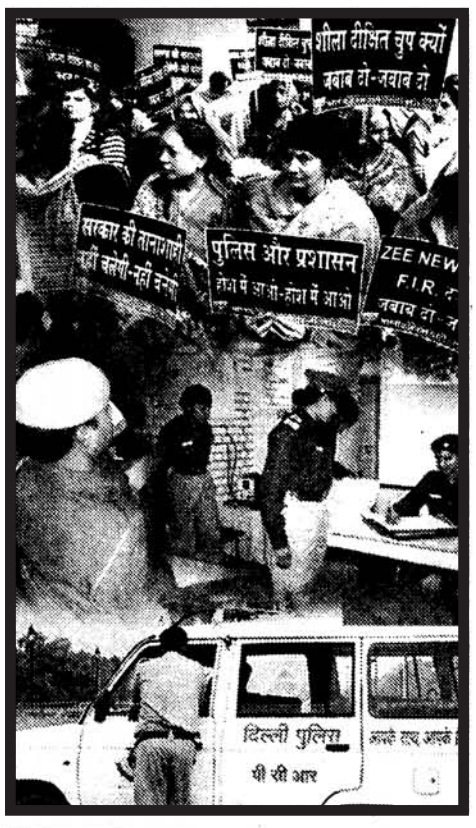

- पुलिसिंग को सुधारना है तो सबसे पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि एफआईआर तो दर्ज हो ही
- यही नहीं एफआईआर दर्ज होने के लिए ज्यादा से ज्यादा तरीके विकसित होने चाहिए। इस काम में इंटरनेट और एसएमएस क्रांति ला सकते हैं
- एफआईआर के आंकड़ों से ही क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो देश का आपराधिक मानचित्र बनाता है
- थानेदार से लेकर मंत्री तक सबको इस आंकड़े के कारण फजीहत झेलनी पड़ती है

पर उतरे जनाक्रोश को देखते हुए हमारे हुक्मरान सबक लेंगे और एक झटके में 'सारे घर की बदल डालेंगे', तो यह भी एक मुगालता ही है। फिलहाल, ऐसा लग रहा है कि महिलाओं से जुड़े चुनिंदा अपराधों को लेकर कुछ सख्त कायदे हमारे सामने आ जाएंगे। लेकिन जल्दी ही उनका भी वैसा ही हाल होगा, जैसा हमने दहेज उत्पीड़न और बाल विवाद जैसे कानूनों का देखा है। ये जजों और कोर्ट की संख्या बढ़ाने की, किसी का कुछ भी नतीजा नहीं निकलता। हालांकि इस बार माहौल कुछ ज्यादा ही बदला हुआ दिख रहा है। उम्मीद है कि जनता का उफान देर से ठंडा पड़ेगा। वैसे ये काम खासा बड़ा और पेंचीदा है। अभी तक देश में सिर्फ एक ही काम समय पर हो पाता है, और वह है विधायिका की खाली जगह को छह महीने के भीतर भर देना।

अगर किसी को यह लगता है कि सड़कों कानून खासे सख्त हैं। फिर भी अपराध की रोकथाम में नाकाम साबित हुए। साफ है कि सिर्फ कानूनी सख्ती सारे मर्ज का इलाज नहीं है। महिलाओं या अन्य तबके के साथ होने वाले अपराधों की प्रवृति में सिर्फ सेक्स ही डिटरमाइनिंग फैक्टर नहीं हो सकता। पुलिस और अदालत के ढर्रों में मामूली छेड़छाड़ करके उसे असरदार नहीं बनाया जा सकता। महिला पुलिस की संख्या आप भले ही बढ़ा लें, उनका जज्बा कैसे बदलेगा? जो भी गिनी-चुनी महिलाएं पुलिस में हैं, वे अपनी वर्दी पर गर्व नहीं करतीं। तभी तो ड्यूटी तक सिविल ड्रेस में पहुंचती हैं और वापस घर भी सिविल ड्रेस में ही जाती हैं। मर्द पुलिस वाले भी ऐसा खूब करते हैं। साफ है कि पुलिस वाले कैसे आत्मविश्वास में जीते हैं।

जो पुलिस के कामकाज और तौर-तरीकों को समझते हैं, उन्हें पता है कि अपराध नहीं हो सके, इसका सारा दारोमदार सिपाही पर ही होता है। इसलिए अपराध हो जाने पर उसका सबसे पहला 'पराक्रम' इस बात को लेकर होता है कि एफआईआर दर्ज न हो। भले ही ये उससे भी बड़ा अपराध हो लेकिन पूरे प्रशासनिक तंत्र की खाल बचाने के लिए सिपाही को ऐसा ही करना पड़ता है। एफआईआर के आंकड़ों से ही क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो देश का आपराधिक मानचित्र बनाता है। थानेदार से लेकर मंत्री तक सबको इस आंकड़े के कारण फजीहत झेलनी पड़ती है।

छोटे अपराधों को छोड़ दें तो पुलिस मानती है कि बड़े अपराधों के मामले में एफआईआर दर्ज करने से बचा नहीं जा सकता है। वैसे कोर-कसर तो इसमें भी नहीं छोड़ी जाती। इसीलिए पुलिसिंग को सुधारना है तो सबसे पहले यह सुनिश्चित करना होगा कि एफआईआर तो दर्ज हो ही। यही नहीं एफआईआर दर्ज होने के लिए ज्यादा से ज्यादा तरीके विकसित होने चाहिए। इस काम में इंटरनेट और एसएमएस क्रांति ला सकते हैं। एफआईआर दर्ज होने के बाद पुलिस के काम की समीक्षा इस बात से होनी चाहिए कि उसने क्या जांच या कार्रवाई की, कितने वक्त में जांच पूरी की, कितने अपराधियों को पकड़ा, क्या बरामदगी की, कितने लोगों को अदालती कार्रवाई के बाद सजा दिलवा सकी? झूठी या दुर्भावनापूर्ण कारणों से एफआईआर दर्ज करवाने वाले का क्या हश्र हुआ? पुलिस के काम की समीक्षा सिर्फ इन्हीं आधारों पर होनी चाहिए। इसी आधार पर ऊपर बैठे लोग तय करें कि पुलिस कैसा काम कर रही है और उसके सामने क्या चुनौतियां हैं।

सही तरीका यही है। जब तक हम इसे नहीं अपनाएंगे, तब तक पुलिस के चेहरे का नूर नहीं बढ़ सकता। वैसे भी समाज में पुलिस के काम को और पुलिस वाले को कौन सम्मान से देखता है? कोई भी समाज पुलिस के बगैर एक पल नही चल सकता। फिर भी उसके बारे में हमारा रवैया नहीं बदलता है। सिर्फ इस बात की रट लगाए रहने से कुछ नहीं होगा कि पुलिस निकम्मी और भ्रष्ट है। यह सब जानते हैं। लेकिन इसकी असली वजह क्या है और वो कैसे दुरुस्त होगी, इसकी बात कम ही हो रही है। कड़े कानून बनाने, फांसी देने और संसद का विशेष सत्र बुलाने के सारे सुझाव लीपापोती के वही आजमाये हुए हथकंडे हैं, जो हम हमेशा से देखते आए हैं। इनसे जमीनी हालात नहीं बदलेंगे।

जरा सोचिए कि कैसे किसी मामले में एफआईआर दर्ज होने के बाद पीड़ितों को अपना बयान दर्ज करवाने से लेकर जांच की पूरी प्रक्रिया के दौरान क्या-क्या झेलना पड़ता है? इनसे पार उतरने के बाद अदालतों में क्या-क्या छीछालेदर भुगतनी पड़ती है? ऐसा हरेक अपराध के मामले में होता है, सिर्फ बलात्कार या हत्या के मामले में नहीं। इस स्तर पर सिस्टम बदलने की जरूरत है। नजरअंदाज़ी से न तो अपराध रुक सकते हैं, न अपराधी को सजा हो सकती है और न ही पुलिस और हुकूमत को बेहतर बनाया जा सकता है। जबकि इन सबकी बेहद जरूरत है। पुलिस की कोई भी कार्रवाई बगैर कोर्ट-कचहरी के पूरी नही हो सकती। लिहाज़ा, यह भी है कि कोर्ट-कचहरी को सुधारे बगैर पुलिस सुधार की प्रक्रिया पूरी नहीं होगी। इसके लिए व्यवस्था बदलनी होगी। सिर्फ कानून बदलने से भी ऐसा नहीं होगा। कितना भी सख्त कानून हो, लागू तो उसे पुलिस और अदालत ही करेंगी।

कानूनी इबारतों की भी एक सीमा है। वह जहां खत्म होती है, वहीं से पुलिस, अदालत और हुकूमत की सरहद शुरू होती है। इन्हीं सरहदों के दरम्यान समाज महफूज रह पाता है। कानून की सीमा अगर अभेद्य किले जैसी हो भी जाए और हुकूमत की सरहद खुली सीमा की मानिंद ही रह गई तो क्या तस्वीर बदल सकती है? नहीं, कभी नहीं। यहां यह साफ होने का है कि पुलिस और अदालत के चेहरे को बदलने का काम खासा खर्चीला है। दुनिया में इसके लिए तरह-तरह के सिद्धांत और फार्मूले अमल में लाए जाते रहे हैं।

(लेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी हैं)

राष्ट्रीय सहारा 6.1.2013

पति की जोर-जबर्दस्ती भी हो कानूनी दायरे में

यौन उत्पीड़न

भारत डोगरा

हाल के समय में यौन हिंसा के विरुद्ध व्यापक स्तर पर जो माहौल बना और उस निमित्त कड़े कानून बनाने की जो बात उठी, उसमें अनेक महिला संगठनों ने यह मांग भी रखी कि वैवाहिक संबंधों के दायरे में होने वाले यौन उत्पीड़न को भी कानून के दायरे में लाया जाना चाहिए। महिला संगठनों की अनेक मांगों को सरकार ने स्वीकार किया है, लेकिन इस पर बात नहीं की। ऐसे में सरकार के दृष्टिकोण की आलोचना होने पर इतना अवश्य कहा गया कि सरकार इस मामले में पुनर्विचार कर सकती है और उसने विकल्प खुले रखे हैं।

बहरहाल, इस मुद्दे की बहुत समय तक उपेक्षा होने के बावजूद इस सवाल को उठाना जरूरी है कि आखिर वैवाहिक संबंधों में यौन उत्पीड़न रोकने के लिए या इसकी संभावना न्यूनतम करने के लिए कानून की सहायता क्यों न ली जाए? इस बात को तो सभी स्वीकार करेंगे कि यौन संबंधों में किसी भी तरह की जोर-जबरदस्ती हर स्थिति में अनुचित है। यदि यह नैतिक दृष्टि से अनुचित है, मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुचित है व महिला अधिकारों की दृष्टि से अनुचित है तो आगे यह कहना जरूरी हो जाता है कि केवल वैवाहिक रिश्तों का आवरण मिल जाने से ही अनुचित मांग उचित नही हो सकती है। अतः इस बारे में कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि वैवाहिक संबंधों के दायरे में यदि यौन संबंधों में जोर-जबरदस्ती होती है तो इसे पूरी तरह अनुचित माना जाए। इससे आगे यह जानना आवश्यक है कि वैवाहिक संबंधों के दायरे में यौन संबंधों के मामले में वास्तव में कितनी जोर-जबरदस्ती होती है। देखा जाए तो इस तरह की जोर-जबर्दस्ती काफी व्यापक स्तर पर होती है और कुछ विशेष कारणों से बढ़ती जा रही है। इस मामले में कुछ प्रवृत्तियां पहले से चली आ रही हैं जबकि कुछ हाल के समय में बढ़ी हैं। मूल प्रवृत्ति तो पुरुष सत्तात्मक समाज के कारण है जो आदिकाल से लेकर आज तक हावी है। पुरुष सत्तात्मक प्रवृत्तियों के कारण यौन संबंध स्थापित करना पति का हक समझा जाता है और इसके लिए पत्नी की सहमति प्राप्त करने की भी आवश्यकता महसूस नहीं की जाती है।

दूसरी प्रवृत्ति बाल विवाह के कारण है। परंपरागत समाज में बाल विवाह की प्रथा तो थी पर साथ में कुछ सावधानियां भी बरती जाती थी कि उचित आयु से पहले यौन संबंध स्थापित न हों। पर इन सावधानियों को सदा नहीं अपनाया जाता। इस कारण कच्ची उम्र में यौन संबंध स्थापित होने की स्थितियां अक्सर स्त्री के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। हमारे समाज में बेमेल विवाह की समस्या व्यापक स्तर पर मौजूद है जो प्रायः कन्या पक्ष की मजबूरियों से जुड़ी होती है। इस कारण भी वैवाहिक जीवन में यौन संबंधों को लेकर जोर-जबर्दस्ती की संभावना बनी रहती है।

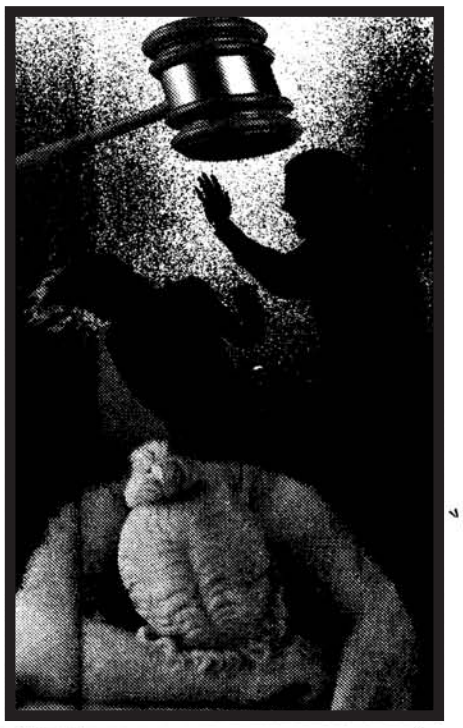

- इस बात को तो सभी स्वीकार करेंगे कि यौन संबंधों में किसी तरह की जोर-जबरदस्ती अनुचित है। यदि यह नैतिक दृष्टि से अनुचित है, मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुचित है व महिला अधिकारों की दृष्टि से अनुचित है तो कहना जरूरी हो जाता है कि केवल वैवाहिक रिश्ते का आवरण मिल जाने से ही अनुचित मांग उचित नहीं हो सकती
- अतः इस बारे में कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि यदि वैवाहिक संबंधों के दायरे में यौन संबंधों में जोर-जबर्दस्ती होती है तो इसे पूरी तरह अनुचित माना जाए

परिवार नियोजन की दृष्टि से या किसी संक्रामक रोग की आशंका के चलते उससे बचने के लिए कई बार पत्नी चाहती है कि पति की ओर विशेषकर कंडोम जैसे गर्भ-निरोधक या कंट्रासैप्टिव का उपयोग हो, जबकि पति को यह स्वीकार्य नहीं होता है। इस कारण भी यौन संबंधों में जोर-जबरदस्ती की स्थिति आ सकती है।

इन सब स्थितियों के अतिरिक्त हाल के वर्षों में वैवाहिक संबंधों में यौन उत्पीड़न बढ़ने का जो नया कारण बहुत तेजी से पनपा है वह है विभिन्न प्रचार माध्यमों द्वारा अश्लील सामग्री का प्रसार। इंटरनेट ने इसमें सबसे नकारात्मक भूमिका निभायी है। वहां यौन संबंधी तमाम विकृतियों की भरमार है। सिनेमा-टीवी व आइटम नंबर से भी नई तरह की सैक्स संबंधी सोच बन रही है। इन सबसे प्रभावित होकर कई बार पति पत्नी से इस तरह के यौन संबंधों की मांग कर बैठता है जो पत्नी को कतई रुचिकर नही लगता। ऐसी स्थिति में कभी-कभी अपनी पुरुष प्रधान सोच के आधार पर पति मनमर्जी के यौन संबंधों के लिए जोर-जबरदस्ती करता है। इस तरह की अनचाही मांग के कारण पत्नी यौन संबंधों के प्रति विमुख हो सकती है और भविष्य में जोर जबरदस्ती की संभावना और बढ़ सकती है। ऐसी स्थितियां बहुत कष्टदायक हो सकती हैं। यह प्रवृत्ति किस हद तक जा सकती है, इसकी जानकारी महिला हिंसा के एक अध्ययन के दौरान मिली जिसमें पति ने पहले पत्नी को बुरी तरह मार-पीट कर घायल किया और कुछ दिन बाद घायल स्थिति में ही उसके साथ जबरदस्ती यौन संबंध स्थापित किया। इन स्थितियों को देखते हुए स्वीकार करना होगा कि पति-पत्नी के रिश्तों में होने वाली यौन संबंधी जोर-जबरदस्ती शारीरिक और मानसिक कष्ट का कारण बन सकती है। यही वजह है कि वैवाहिक संबंधों के दायरे में होने वाले यौन उत्पीड़न को भी यौन हिंसा विरोधी कानूनों के दायरे में लाये जाने की पैरवी की जाती रही है।

देखा जाए तो यह नई सोच नहीं है। विश्व के अनेक देशों में पहले से ऐसी कानूनी व्यवस्था मौजूद है। विश्व स्तर पर कानून की स्थिति क्या है, इसके बारे में विधि विशेषज्ञ अरविंद जैन बताते हैं, 'दुनिया के 76 देशों में वैवाहिक बलात्कार दंडनीय अपराध है जबकि भारत सहित पांच देशों में इसको अपराध केवल तब माना जाता है जब पति-पत्नी कानूनी तौर पर एक-दूसरे से अलग रह रहे हों।' वह आगे कहते हैं, '1991 में आर बनाम आर मामले में हाउस ऑफ लार्ड्स की राय के मुताबिक कोई भी पति अपनी पत्नी के साथ बिना सहमति के यौन संबंध बनाने पर अपराधी हो सकता है क्योंकि इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि शादी के बाद सभी परिस्थितियों में पत्नी यौन संबंध बनाने के लिए खुद को पेश करेगी। पीपुल्स बनाम लिब्रेटा मामले में न्यूयार्क की अपील कोर्ट ने कहा कि बलात्कार और वैवाहिक जीवन में बलात्कार के बीच अंतर करने का कोई औचित्य नही है। कोर्ट ने न्यूयार्क के उस कानून को असंवैधानिक करार दिया, जिसने वैवाहिक बलात्कार को अपराध न मानने की छूट दे रखी थी। नेपाल के सुप्रीम कोर्ट ने घोषित किया कि पत्नी की सहमति के बिना वैवाहिक सेक्स बलात्कार की श्रेणी में आएगा।'

वैश्विक स्तर के इस मूल्यांकन से पता चलता है कि इस संबंध में कानून का झुकाव भी वैवाहिक संबंधों में यौन उत्पीड़न को गैर-कानूनी मानने के पक्ष में है और इस बारे में कानून बनाने से परहेज नही होना चाहिए। गौर से विचार करें तो बहुचर्चित वर्मा समिति की रिपोर्ट का झुकाव भी इस ओर दिखता है। संसदीय समिति के दो सदस्यों प्रशांत चटर्जी व डी. राजा ने भी वर्मा समिति की सिफारिशों का समर्थन किया।

यह धारणा अनुचित है कि ऐसा कानून बनने से परिवार टूटेंगे। इस तरह की शिकायतें परिवार से बाहर बहुत कम की जाती हैं, पर कानून बनने व प्रचारित होने से अनुचित जोर-जबरदस्ती के प्रति डर जरूर पैदा हो जाता है।

वैवाहिक संबंधों में यौन उत्पीड़न के विरुद्ध कानून का उद्देश्य भी यही होगा कि इस जोर-जबरदस्ती की प्रवृत्ति को कम से कम किया जाए। इस तरह एक बुराई व अन्याय की संभावना को पहले की अपेक्षा कम किया जा सकता है पर स्थिति को बेहतर करने का एकमात्र उपाय कानून नही है। उसके साथ पति-पत्नी के संबंधों को बेहतर करने और उनमें अधिक कोमलता लाने के अन्य प्रयास साथ में होने चाहिए। अंतिम उद्देश्य तो परिवार को बचाना और मजबूत करना ही है। यदि यौन संबंधों में जोर-जबरदस्ती न हो तो इससे वैवाहिक जीवन सुखद होगा और परिवार की खुशहाली बढ़ेगी।

(आलेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी हैं)

राष्ट्रीय सहारा 22.3.2013

परिवार व विवाह बचाने का तर्क

नरेश गोस्वामी

लेखक टिप्पणीकार हैं।

महिलाओं के विरुद्ध यौन अपराध से संबंधित अध्यादेश पर गठित संसदीय समिति ने पिछले दिनों साफ कर दिया कि वैवाहिक संबंध में बलात्कार की घटना को यौन अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जाएगा। समिति के अधिकांश सदस्यों का मानना था कि अगर इस प्रस्ताव को स्वीकार किया गया तो यह विवाह की संस्था के लिए विनाशकारी साबित होगा। समिति के सदस्य वेंकैया नायडू के अनुसार ऐसे मामले आमतौर पर परिवार द्वारा निपटा लिए जाते हैं इसलिए इसके लिए अलग से कोई कानून बनाना वांछनीय नहीं होगा। बहुमत की राय में इस बात का हवाला दिया गया कि वैवाहिक संबंधों में क्रूरता और हिंसा के उपबंध पहले से ही हैं, जिनके आधार पर स्त्री अत्याचारी साथी के खिलाफ अदालत में जा सकती है।

गौरतलब है कि मसले पर कई सदस्यों ने अलग राय भी रखी थी। उनका कहना था कि विवाह में यौन संबंधों के प्रति सहमति कोई शाश्वत या स्थायी स्थिति नहीं होती। इसलिए स्त्री पक्ष के पास इस हिंसा से बचने की गुंजाईश होनी चाहिए। पर अंततः उनके तर्कों को आम राय में शामिल नहीं किया गया।

कहना न होगा कि समिति ने इस मामले में व्यक्ति से पहले परिवार और विवाह की संस्थाओं को प्रधानता देकर एक तरह से रूढ़िवादी सोच का साथ दिया है। इस बात पर वितंडा खड़ा करना सरासर बदमजगी ही होगी कि विवाह और परिवार मनुष्य के सबसे अहम भावनात्मक और आर्थिक संबल होते हैं। लेकिन सरकार के सामने मूल मुद्दा यह नहीं था कि इन संस्थाओं की निरंतरता को कैसे बरकरार रखा जाए। सवाल असल में यह था कि जब विवाह और परिवार संबल और सुरक्षा के बजाए यातना व दमन के कारण बनने लगें तो ऐसे में इन संस्थाओं का क्या किया जाए। यह ठीक है कि कुछ नकारात्मक उदाहरणों के आधार पर पूरे समाज के लिए सर्वमान्य सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता। लेकिन यह बात भी उतनी है सटीक है कि संबंधों में दमन और उत्पीड़न की असामान्य घटनाएं अक्सर यह इशारा भी करती हैं कि जिन संस्थाओं को हम प्रश्नों और संदेह से परे मानकर निश्चिंत हो बैठते हैं उनमें सब कुछ सही नहीं होता। अंततः समाज की सारी संस्थाएं दैवीय आदर्शों की रक्षा के लिए नहीं बल्कि मनुष्य के लिए बनाई जाती हैं।

अगर समिति वैवाहिक बलात्कार को इसलिए मान्यता नहीं देना चाहती क्योंकि इससे परिवार और विवाह की संस्थाएं बिखर जाएंगी तो उसे पारंपरिक विवाह की मौजूदा संस्कृति पर भी नजर डालनी चाहिए। उसे यह भी जानना चाहिए कि हमारे समाज में विवाह के अनुष्ठान को चाहे पवित्रता का कैसा ही आभामंडल दिया जाता हो लेकिन उसकी सज-धज, खर्च और आडंबर का संबंधों की उष्मा से कोई नाता नहीं होता। अक्सर तो ऐसे संबंध बहुत जल्द आपसी कलह, पारिवारिक तनावों, कानूनी दांवपेंचों, अत्याचार, चुप्पी और बेगानगी में जा फंसते हैं। इसलिए पिछले वर्षों में अर्थव्यवस्था ने सामाजिक जीवन को जिस तरह बदला है उसमें विवाह की संस्था अपने पूर्व और परिचित रूप में जिंदा नहीं रह सकती। संचार और तकनीकी के साधनों और आत्मनिर्भरता ने स्त्री को जैसा स्पेस दिया है उसके बाद पारंपरिक विवाह कई बार उसके लिए एक थोपा हुआ फैसला भी हो जाता है। समिति अगर इन संस्थाओं को बचाने पर तुली है तो उसे कम से कम विवाह के मौजूदा स्वरूप को देखने की हिम्मत भी जुटानी चाहिए थी।

गौर करें कि जिस तरह संसदीय समिति के बहुमत ने विवाह को बचाने के लिए वैवाहिक बलात्कार का संज्ञान लेने से मना किया है उसी तरह से हमारे समाज का मुखर बहुमत भी विवाह और परिवार के प्रशस्ति गान में सीधे वैदिक काल में छलांग लगाने का आदी रहा है। उसके आगे जब भी स्त्री की कमतर और कमजोर स्थिति का जिक्र किया जाता है तो वह वेद और उपनिषदों में वर्णित विदुषियों की फेहरिस्त दिखाने लगता है। लेकिन स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व और उसकी पसंद नापसंद के बारे में वह कभी बात नहीं करता।

- यह सही है कि विवाह की विफलता और तलाक आदि के मामलों में कई बार काननी प्रावधानों का दुरुपयोग होता है और निर्दोष लोगों को भी झूठे मुकदमों में फंसा दिया जाता है लेकिन यह स्त्री की स्वायत्तता के खिलाफ तर्क नहीं हो सकता।

जाहिर है कि समिति और सरकार विवाह और परिवार को एक ठहरे हुए फ्रेम में देखना चाहती है। उसके अनुसार अगर परिवार वैवाहिक जीवन में हिंसा और अत्याचार की घटनाओं से खुद निपट सकता है तो यही कहा जाएगा कि उसकी राय और निष्कर्ष मौजूदा परिस्थितियों के आकलन से निर्धारित न होकर जड़ीभूत विचारों और आग्रहों से निकले हैं। उसने शायद इस तरफ ध्यान भी नहीं दिया है कि मौजूदा समय में स्त्री-पुरुष के साथ रहने के लिए विवाह ही एकमात्र आधार नहीं रह गया है। पिछले वर्षों में महानगरों में सहजीवन के उदाहरण बढ़ते जा रहे हैं। सहजीवन की अपनी चाहे जितनी जटिलताएं हों लेकिन पारंपरिक विवाह के मुकाबले वह निश्चित ही एक अग्रगामी स्थिति है क्योंकि उसमें साहचर्य का आधार उनका निजी फैसला होता है।

महिला संगठनों और स्त्री मुक्ति के विमर्श में यह दलील लंबे समय से अपनी जगह पर कायम है कि स्त्री का अपनी देह पर अधिकार होना चाहिए। लेकिन परंपरा की दुहाई देने वाले वर्ग को यह विचार पश्चिम से आया प्रदूषण लगता है। हमारा यह नव-रूढ़िवादी मध्यवर्ग अमेरिका और यूरोप की भौतिक सुविधाएं तो चाहता है लेकिन उस संस्कृति के मानवीय और प्रगतिशील तत्वों से परहेज करता है। इस तरह वह पश्चिम के कथित खुलेपन को तो अपनी यौन इच्छाओं और फंतासियों के लिए इस्तेमाल करना चाहता है लेकिन उनकी तरह यौन संबंधों की आचार संहिता का सम्मान नहीं करता। आखिर क्या वजह है कि दुनिया के सौ देशों में वैवाहिक बलात्कार को यौन अपराध मान लिया गया है जबकि हमारे यहां नैतिकता के हिमायतियों को घर-परिवार उजड़ने के दुःस्वप्न आने लगे।

यह सही है कि विवाह की विफलता और तलाक आदि के मामलों में कई बार काननी प्रावधानों का दुरुपयोग होता है और निर्दोष लोगों को भी झूठे मुकदमों में फंसा दिया जाता है लेकिन यह स्त्री की स्वायत्तता के खिलाफ तर्क नहीं हो सकता। क्योंकि आरोप जायज है या झूठा यह तय करना कानून की मशीनरी का काम है। इसके आधार पर स्त्री की बुनियादी आजादी का प्रश्न खारिज नहीं किया जा सकता। लिहाजा परिवार और विवाह की संस्थाओं को बचाने की कवायद में समिति ने दो अहम सवालों से पलायन किया है कि स्त्री की देह पुरुष का उपनिवेश क्यों बनी रहे और दूसरा यह कि परिवार व विवाह बचाने की जिम्मेदारी उसी के हिस्से में क्यों आए।

naresh.goswami@gmail.com

दैनिक भास्कर 6.3.2013

गुलाब का तेजाब में बदल जाना

परिदृश्य

मनीषा सिंह
edit@amarujala.com

हमारे देश की लड़कियां बचपन से जिन हिंदी फिल्मों को देखकर बड़ी हुई हैं, उनमें से ज्यादातर फिल्में प्रेम में त्याग और बलिदान की बातें करती हैं। ऐसी फिल्में कम ही हैं, जिनमें प्रेमी इंकार करने पर प्रेमिका की हत्या कर डाले या उसका बलात्कार करे या फिर तेजाब डालकर उसका चेहरा विकृत कर डाले। पर न जाने क्यों, पूरे एशियाई समाज में–तू मेरी नहीं हुई, तो किसी और की नहीं हो सकती-वाली मानसिकता इधर कुछ ज्यादा तेजी से फैली है। अनगिनत किस्से हैं, जिसमें कोई खाप पंचायत नहीं थी, प्रेम के विरोध में समाज तलवारें खींचे नहीं खड़ा था, मां-बाप के इंकार-स्वीकार की तो नौबत ही नहीं आई थी। लेकिन एकतरफा प्यार में पगलाए प्रेमी यह स्वीकार नहीं कर पाए कि जिस लड़की पर वे दिलोजान से फिदा हैं, वह किसी और को भी चाह सकती है। हर सुंदर लड़की क्या सिर्फ प्यार के लिए बनी है और वह भी एकतरफा? क्या प्रेम में हिंसक युवा इस सोच से बाहर निकल पाएंगे?

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं पर तेजाब से हमलों के मामले में चिंता जताते हुए इस संबंध में सरकार द्वारा उठाए गए कदमों को नाकाफी बताया। कोर्ट की यह टिप्पणी छह साल पुरानी एक जनहित याचिका पर आई है। वर्ष 2006 में दिल्ली के तुगलक रोड इलाके में एक लड़के ने शादी से इंकार करने पर एक लड़की पर तेजाब फेंक दिया था, जिससे उसका चेहरा और हाथ खराब हो गए थे।

ऐसी घटनाएं केवल दिल्ली-हरियाणा में ही नहीं होतीं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश समेत तकरीबन पूरे एशिया का समाज महिलाओं के साथ ऐसा ही व्यवहार करता है। कुछ ही महीने पहले पाक-अधिकृत कश्मीर में एक मां-बाप ने अपनी नाबालिग बेटी पर सिर्फ इसलिए तेजाब डाल दिया, क्योंकि वह अपने पीछे मोटरसाइकिल से आ रहे लड़के को गौर से देख रही थी। इसे पिछड़ी सोच के मां-बाप ने कलंकित करने वाली घटना के रूप में देखा और उस पर तेजाब डाल दिया, जिससे उसकी मौत हो गई। इधर बिहार के सीवान में दसवीं में पढ़ने वाली एक लड़की पर एकतरफा प्यार में नाकाम लड़के ने तेजाब फेंक दिया, जिससे वह 90 फीसदी तक जल गई। ऐसी घटनाएं सैकड़ों में हैं, जहां तेजाबी हमले की शिकार लड़कियों और महिलाओं के सामान्य जीवन में लौटने की संभावनाएं तकरीबन खत्म ही हो गई हैं।

हमारा पुरुष समाज महिलाओं को जागीर समझता है। इसलिए जब भी स्त्रियां जरा-सी आजादी मांगती हैं, उनका सिर कुचल दिया जाता है।

जरा सोचिए कि कितनी लड़कियां हैं, जो पुरुषों पर तेजाब फेंककर अपना कलेजा ठंडा करने की कोशिश करती हैं। अपवाद स्वरूप ही एकाध मिल जाए, पर अमूमन लड़कियां ऐसा नहीं करतीं, अलबत्ता प्रेम में वे भी नाकाम होती हैं। वे ऐसा इसलिए नहीं करतीं, क्योंकि वे मर्दों को अपनी मर्जी से जीने का हक देना जानती हैं, उन्होंने प्रेम में खुद को बलिदान करना ही सीखा है। वे मानती हैं कि जो उनका नहीं हो सका, वह किसी और का तो होगा। पर हमारा पुरुष समाज अपनी विफलता का प्रतिकार चाहता है, क्योंकि वह महिलाओं को अपनी जागीर समझता है। इसलिए जब भी स्त्रियां अपने लिए जरा-सी आजादी मांगती हैं, उनका सिर कुचल दिया जाता है। ऐसा लगता है कि ये मर्द तेजाब भरी बोतल में ही गुलाब लगाए चलते हैं। यानी अगर प्रेम (चाहे उसमें रत्ती भर सच्चाई न हो) के प्रतीक गुलाब को लड़की ने मंजूर नहीं किया, तो उसी क्षण उस पर तेजाब उड़ेल दिया जाएगा। कितना खतरनाक है ऐसा प्रेम!

इससे जाहिर होता है कि संपन्नता और शिक्षा के बावजूद पुरुषों की मानसिकता में कोई सुधार नहीं हुआ है, बल्कि आत्मकेंद्रित मानसिकता ने उसे हिंसक दरिंदा बना दिया है। ऐसे ज्यादातर हादसों के पीछे वह खाया-पिया युवा वर्ग है, जिसके पास विलासिता की कमी नहीं है, और जो ऊंचे संपर्कों के कारण बच निकलता है। थॉमस रायटर फाउंडेशन के मुताबिक, दुनिया में भारत ऐसी चौथी सबसे खतरनाक जगह है, जहा हर तबके, उम्र व जाति की महिलाओं के साथ लगभग एक जैसा हिंसक व्यवहार किया जाता है। हमारे देश में राधा-कृष्ण, हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल के प्रेम की दुहाई दी जाती है। काश, हम पाश्चात्य जगत से सिर्फ प्रेम का ही पाठ सीखते, उसकी व्यक्तिवादी, भोगवादी हिंसक प्रवृत्तियों को नहीं अपनाते, तो शायद ऐसा भयावह मंजर देखने को नहीं मिलता!

अमर उजाला 13.2.2013

बेशक, तेजाब के हमले में महिलाओं की मौत नहीं होती, लेकिन विद्रूपता और विकृति की वजह से उनकी शेष जिंदगी मौत से भी बदतर हो जाती है। कहते हैं-'वक्त हर जख्म भर देता है', लेकिन इस जख्म पर वक्त का मरहम भी काम नहीं आता। विडंबना यह है कि तेजाब की शिकार लड़कियों के प्रति समाज भी संवेदनशील रवैया नहीं अपनाता।

पीड़ित लड़कियों का अपना परिवार, अपना बच्चा भी उनसे खौफ खाता है। और उन्हें अकेला छोड़ देता है।

जी-20 सर्वे के मुताबिक भारत में हर रोज 480 महिलाओं के साथ हिंसा, हर 15 मिनट में एक महिला के साथ छेड़छाड़ होती है। हर 53 मिनट में यौन शोषण, हर 23 मिनट में अपहरण होता है। हर 29 मिनट में एक बलात्कार और हर दिन दहेज हत्या के 17 मामले दर्ज होते हैं

मुआवजा और पुनर्वास में कोताही क्यों?

विश्लेषण

कमलेश जैन

आज से तीन महीने पहले 14 नवम्बर 2012 को पुडुचेरी स्थित कराकल में तेजाबी हमले की शिकार 23 वर्षीय विनोदिनी ने आखिरकार इलाज के दौरान दम तोड़ दिया। बी टेक ग्रेजुएट और एक प्राइवेट कंपनी में कार्यरत विनोदिनी का कसूर सिर्फ इतना था कि उसने अपने पिता के जानने वाले वाले युवक का विवाह प्रस्ताव ठुकरा दिया और इससे गुस्साये युवक ने पिता के साथ बस में सवार हो रही विनोदिनी के चेहरे पर तेजाब फेंक उसे बुरी तरह जख्मी कर दिया। समय-समय पर घटने वाली इस तरह की तमाम घटनाओं में एक जमशेदपुर की मेधावी छात्रा सोनाली मुखर्जी पर भी तेजाब फेंका गया और बीती 10 फरवरी को फरीदाबाद में 10वीं की एक छात्रा पर दो व्यक्तियों ने तेजाब फेंक दिया। ये सभी पीड़ित गरीब तबके से आती हैं। लेकिन विडम्बना है कि तेजाब पीड़ितों को न पर्याप्त मुआवजा मिल पाता है, न उनका पुनर्वास हो पाता है और न उनके अपराधियों को पर्याप्त सजा मिल पाती है। जबकि ऐसी कोई भी पीड़ित जीवन भर के लिए अभिशप्त जीवन जीने को विवश होती है।

इस क्रम में करीब दो-ढाई महीने पहले लोकसभा टीवी पर अर्चना शर्मा की डॉक्यूमेंट्री 'आंचल में आकाश' बहुत ही संवेदनशील है। यह तेजाब हमले की शिकार लड़कियों की व्यथा है। पात्रों में से एक अन्नू मुखर्जी के चेहरे पर अभियुक्त लड़की और उसके भाई ने 19 दिसम्बर 2004 को तेजाब डाल उसे बुरी तरह जला दिया था। इस जघन्य हमले में अन्नू की दोनों आंखें चली गईं और चेहरा मांस का पिंड बन गया था। इस मामले में दिल्ली की पटियाला कोर्ट की फास्ट ट्रैक अदालत का फैसला 15 जनवरी 2011 को सात साल बाद आया। अभियुक्तों को सजा हुई पांच वर्ष और जुर्माना लगा दो लाख। अन्नू को सात वर्ष बाद मिले एक लाख 60 हजार रुपये यानी जुर्माने की 80 फीसद रकम। यही नहीं, अभियुक्त कयूम के साथ अदालत की सहानुभूति भी दिखी। फैसले के दूसरे पैराग्राफ में लिखा था- कयूम 28 वर्ष का है, शादीशुदा है तथा उसके क्रमशः 3, 4 तथा 10 वर्ष की उम्र के तीन बच्चे हैं। वह परिवार में अकेला कमाने वाला है। उसके बूढ़े माता-पिता उस पर आश्रित हैं, वह गरीब है और यह उसका पहला अपराध है। उधर पीड़िता अन्नू मात्र 12 वर्ष की थी जब उसके माता पिता कार एक्सीडेंट में मारे गए। एक छोटा भाई डेढ़ साल का था। अन्नू ही उसे पालती और कमाती थी। वह मौसी के यहां रह सकती थी पर अपना खर्च उसे खुद उठाना पड़ता था। उसी को 22-23 वर्ष की उम्र में तेजाब से अंधा कर दिया गया। जबकि उसे भी सुखी जीवन की, विवाह की, बच्चों की चाह थी। उसका सब कुछ खत्म हो गया पर इसका कहीं कोई जिक्र फैसले में नहीं है।

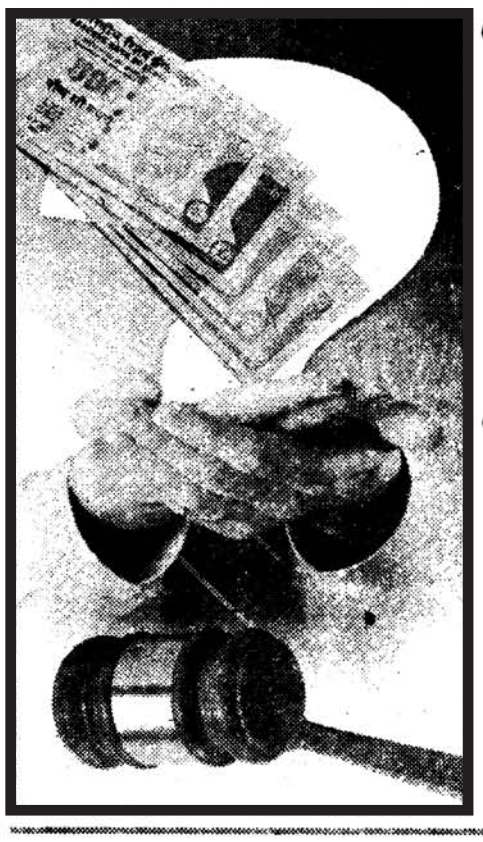

- हत्या में आदमी चला जाता है। बलात्कार में भी किसी हद तक जीवन पटरी पर आना संभव है, पर तेजाब पीड़िता तो शारीरिक रूप से जीते-जी असहाय हो जाती है। पीड़ित के अंधा होने पर भी कानून की आंखें इस अपराध के प्रति क्यों नहीं खुलती
- सवाल है कि लड़कियों पर जब-तब इतनी आजादी से तेजाब क्यों और कैसे फेंक दिया जाता है? कारण है तेजाब का मामूली कीमत में हर किराना दुकान पर उपलब्ध होना। क्या सरकार का कर्त्तव्य नहीं कि वह इस अति ज्वलनशील पदार्थ की बिक्री व खरीद पर रोक लगाए

फैसले के करीब दो वर्ष बाद, मैंने अन्नू की अपील दिल्ली उच्च न्यायालय में फाइल की। उसमें कहा गया कि जब भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में 10 वर्ष से आजीवन कारावास का प्रावधान है तो क्यों अभियुक्तों को यह रियायत दी जाती है जबकि अन्नू से उसकी पहचान, उसका व्यक्तित्व ही छीन लिया गया है। हत्या में आदमी चला जाता है- बलात्कार में भी किसी हद तक जीवन पटरी पर आना संभव है, शादी-बच्चे-नौकरी, व्यक्तित्व संभव है पर तेजाब पीड़िता तो शारीरिक रूप से जीते-जी असहाय हो जाती है। समझ नहीं आता कि पीड़ित के अंधा होने पर भी कानून की आंखें इस अपराध के प्रति क्यों नहीं खुलतीं! दूसरे, मुआवजा इतनी देर से और इतना कम किस आधार पर दिया जाता है? पीड़ित को सरकार तुरंत इलाज क्यों नहीं मुहैया करवाती? अपराध किसने किया, इसका फैसला बाद में होता रहेगा। ऐसे पीड़ितों को लंबे समय तक इलाज व पुनर्वास यानी मकान और भरण-पोषण सब मिलना चाहिए। अक्सर ये घटनाएं गरीबों के साथ होती हैं और कम हैसियत वाले अभियुक्त इन्हें अंजाम देते हैं तो इलाज व पुनर्वास का कर्त्तव्य राज्य ही तो निभाएगा।

सवाल उठता है कि लड़कियों पर जब-तब इतनी आजादी से तेजाब क्यों और कैसे फेंक दिया जाता है? कारण है तेजाब का आसानी से मामूली कीमत में हर किराना दुकान पर उपलब्ध होना। क्या सरकार का कर्त्तव्य नहीं है कि वह इस अति ज्वलनशील पदार्थ की बिक्री व खरीद पर अविलम्ब रोक लगाए, जिसे अपराधियों द्वारा हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। बांग्लादेश तक में तेजाब की खरीद-बिक्री पर रोक है। लेकिन विडम्बना है कि हाल तक सर्वोच्च न्यायालय तक से चेहरा जलाने व आंखें नष्ट करने के अपराध के लिए 1 वर्ष, 2 वर्ष तथा अधिकतम 5 वर्ष तक की सजा दी गई है। कहना न होगा कि न्यायपालिका तथा सरकार द्वारा इस अपराध को काफी हल्के से लिया गया है।

कुछ दिनों पहले 28 जनवरी, 2013 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मोहिन्दर सिंह की फांसी की सजा को आजीवन कारावास में तब्दील किया गया। यह वह जघन्य अपराधी है जिसने पहले अपनी नाबालिग बेटी का बलात्कार किया और 12 वर्ष की सजा पाकर जब वह पैरोल पर छूट कर आया तो उसने पत्नी और बेटी की हत्या कर दी। कारण उन्होंने उसे सजा दिलवाई थी। सर्वोच्च न्यायालय को मोहिन्दर में सुधार की संभावना नजर आई जबकि सजा के इतने वर्ष बाद भी उसमें कोई सुधार नहीं आया था।

पर हाल में कुछ ज्वलंत समस्याओं पर सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ कड़े फैसले लिए हैं। फरवरी 2013 में सात वर्ष के बच्चे के अपहरण और हत्या पर अभियुक्त की फांसी की सजा बहाल रखी गई है। फरवरी, 13 में ही तेजाब पीड़ित के एक मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय का कहना है- जहां अभियुक्त मुआवजा नहीं दे सकता, वहां राज्य सरकारें पीड़ित का मुफ्त इलाज व पुनर्वास का प्रयास करें और तेजाब बेचने पर रोक लगाएं।

वर्मा कमेटी ने इस अपराध की सजा मात्र 10 वर्ष रखी है जो पहले के भा.दं.सं की धारा 326 के मुकाबले कम है। कमेटी ने कहा है कि तेजाब पीड़ित जान बचाने के क्रम में अभियुक्त को जान से मार सकती है पर यह अधिकार सच्चाई से परे है। क्योंकि वह अचानक और पलक झपकने के पहले इसका शिकार होती है, इसीलिए आंखें सबसे पहले नष्ट हो जाती हैं। यानी तेजाब पड़ते ही वह पूरी तरह लाचार, अंधी, अशक्त हो जाती है, अतः बचाव का या किसी को मारने का प्रश्न ही नहीं उठता। तो फिर इस अधिकार का मिलना एक मजाक की तरह ही है।

न्यायपालिका तथा राज्य सरकारें सोचें कि जब मोटर व्हीकल एक्ट, 1988 में मुआवजा किश्तों में तथा लगातार मिलता है तो इलाज व पुनर्वास के लिए यहां क्यों नहीं? अपने एक अन्य फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि सरकारी अस्पताल नहीं कह सकते वे घायलों की चिकित्सा अतिरिक्त बिस्तर न होने पर नहीं कर पाएंगे। अब तो 'बहादुर लड़की' के मुकदमे में अदालतें कह रही हैं घायलों का इलाज नजदीकी (सरकारी या प्राइवेट) अस्पतालों में अनिवार्य है। मेन्टेनेन्स एक्ट में किसी भी आश्रित को दर-दर भटकने पर मजबूर नहीं किया जा सकता। बूढ़े, बच्चे, पत्नी, माता-पिता सबका भरण-पोषण अनिवार्य है। न्यायपालिका व सरकार, तेजाब पीड़िताओं की अभिभावक यही दो संस्थाएं हैं। अतः उनका कर्त्तव्य है कि वे अभियुक्तों को कड़ी सजा दें तथा पीड़ित के मुफ्त इलाज के साथ पुनर्वास का उचित प्रबंध करें। इन मामलों में फास्ट ट्रैक कोर्ट 2-3 महीनों में फैसला दें। यह भी अति आवश्यक है।

(लेखिका सुप्रीम कोर्ट में वरिष्ठ अधिवक्ता हैं। आलेख में व्यक्त विचार उनके निजी हैं।)

राष्ट्रीय सहारा 14.2.2013

महिला हिंसा के विरुद्ध जरूरी पहल

मुद्दा

भारत डोगरा

'उमड़ते 100 करोड़ के अभियान' के अंतर्गत 14 फरवरी को दुनिया भर में तमाम जगहों पर रचनात्मक तरीके से महिला हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई जाएगी। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा रोकने के लिए समाज में जो व्यापक विमर्श इन दिनों चल रहा है, उसकी लंबे समय से जरूरत थी। पर इस विमर्श की एकपक्षीय पहलू यह रहा कि इसमें ज्यादा जोर अपराधियों को कठोर सजा दिलवाने पर ही दिया गया है। यह इस कारण क्योंकि उम्मीद है कि कठोर सजा के गय से दरिंदें ऐसे अपराध नहीं करने से हिचकेंगे। बहरहाल, मूल और अंतिम उद्देश्य इस अपराध की संभावना को कम करना है। अपराधी के लिए कठोर सजा की व्यवस्था करना इस मूल उद्देश्य तक पंहुचने का एक रास्ता है।

पर इसके अतिरिक्त भी महिला हिंसा को कम करने के अनेक महत्वपूर्ण उपाय हैं जिन पर हमें समुचित ध्यान देना होगा। सबसे बड़ी बात यह है कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की प्रवृत्ति ही कम हो। यह प्रवृत्ति परंपरागत समाज में भी मौजूद है और आधुनिक समाज में भी। जो परंपरावादी हैं, उन्हें केवल आधुनिक समाज की गलतियां नजर आती हैं और आधुनिक सोचवालों को प्रायः परंपरागत समाज की ही गलतियां दिखती हैं। हकीकत यह है कि अनुचित प्रवृत्ति चाहे परंपरा की हो या आधुनिकता की, को दूर करना ही होगा। अतः महिलाओं के विरुद्ध हिंसा कम करने के प्रयास हर स्तर पर होने चाहिए।

महिलाओं के विरुद्ध तमाम तरह की हिंसा में बलात्कार को विशेष तौर पर निंदनीय माना गया है। यह अनैतिकता और हिंसा का बहुत ही वीभत्स रूप है। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक अमेरिकी विश्वविद्यालयों में एक सर्वेक्षण के बारे में अनुसंधानकर्ता नील मालमुथ ने बताया है कि जब पुरुप विद्यार्थियों से पूछा गया कि कोई सजा न हो तो क्या वे महिलाओं से यौन संबंध बनाने में जोर-जबरदस्ती करेंगे तो 58 प्रतिशत ने अपनी स्वीकृति जताई। यदि समाज की यह स्थिति है कि सबसे अनैतिक कार्य को केवल डंडे के बल पर या सजा के डर से रोका जा रहा है तो वह बहुत चिंताजनक स्थिति है। यह एक बीमार समाज का लक्षण है। अतः बीमारी व बीमारी के कारणों को दूर करना जरूरी है। दूसरे शब्दों में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की जो प्रवृत्ति है, उसे चरित्र-निर्माण के माध्यम से मिटाना होगा। इस मूल कार्य की उपेक्षा होती रहे तो अन्य उपाय अधिक असरदार नहीं होंगे।

कोई अपराध हो यया है तो उसके लिए न्यायोचित सजा जरूर मिलनी चाहिए। पर इससे भी कहीं अच्छी स्थिति यह होगी कि अपराध की संभावना ही कम हो जाए। इसके लिए परिवार व शिक्षा संस्थानों में कम उम्र से ही ऐसे संस्कार व चरित्र विकसित होना चाहिए कि हिंसा और जोर-जबरदस्ती की संभावना न्यूनतम की जा सके। कच्ची उम्र में प्रतिकूल असर को रोकने के पूरे प्रयास होने चाहिए। लिंग आधारित भेदभाव व जोर-जबरदस्ती दूर करने के व्यापक महत्व को कम उम्र से ही समझना चाहिए। इसके स्थान पर सकारात्मक मूल्यों का प्रसार होना चाहिए।

एक दूसरा जरूरी कार्य यह है कि शराब व अन्य

मादक पदार्थों के चलन को न्यूनतम किया जाए। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि नशे के प्रसार से भी महिलाओं के विरुद्ध हिंसा बढ़ती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन बताते हैं कि अधिक शराब पीने वाले क्षेत्रों में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मामले अधिक पाए गए और उसका कारण शराब थी। हाल के वर्षों में अपनी आय बढ़ाने के लिए ज्यादातर राज्य सरकारों ने शराब के ठेकों को तेजी से बढ़ाया है और अब यह ठेके दूर-दराज के गांवों में भी पंहुच गए हैं।

गांवों में शराब की नजदीक व आसान उपलब्धि का असर यह हुआ है कि शराब की खपत तेजी से बढ़ गई है। मेहमाननवाजी व शादी-ब्याह आदि में भी शराब का चलन तेजी से बढ़ रहा है। शराब के विरुद्ध जो सामाजिक बंधन थे, वे टूटते जा रहे हैं। पीना-पिलाना शान की बात समझी जा रही है। गांव-गांव में खुले शरांब के ठेकों पर प्रायः बदमाश अपना अड्डा बना लेते हैं। आती-जाती महिलाओं को अक्सर उनकी छेड़छाड़ का शिकार होना पड़ता है और कभी-कभी ज्यादा गंभीर किस्म की हिंसक घटना भी घट जाती है। महिला घर में पति को शराब पीने से मना करती है तो उसे पीटा जाता है, जबकि घर से बाहर शराबियों द्वारा यौन हिंसा की संभावना बढ़ती है। जो बेहद अनुचित कार्य होश-हवास में करने से पहले आदमी बीस बार सोचता है, उसे शराब के नशे में बेहिचक कर डालता है। कुल मिलाकर शराब के बढ़ते चलन ने महिलाओं के जीवन को बेहद असुरक्षित बनाया है।

यही स्थिति शहरों की स्लम बस्तियों में व शराब की दुकानों के आसपास के क्षेत्रों में भी देखी जा सकती है। हालांकि स्कूलों के निकट शराब का ठेका खोलने पर प्रतिबंध है, पर कई बार इसकी भी अवहेलना की जाती है। जिसके कारण छात्राओं के लिए तो स्कूल जाना तक बहुत असुरक्षित हो जाता है। अतः महिलाओं के विरुद्ध हिंसा रोकने व कम करने का एक अनिवार्य बिंदु यह भी होना चाहिए कि सरकार शराब की उपलब्धि को व्यापक और सरल बनाने के स्थान पर इसे समुचित ढंग से नियंत्रित करे।

कुछ स्थानों पर जहां महिलाओं के विरुद्ध हिंसा रोकने के गंभीर व निष्ठावान प्रयास हुए हैं, वहां हिंसा कम करने में काफी सफलता भी मिली है। इन प्रयासों का सावधानी से विश्लेषण कर बहुत कुछ सीखा जा सकता है कि व्यापक स्तर पर कैसे प्रयास जरूरी हैं। हिंसा रोकने के प्रयासों के बावजूद यदि हिंसा की कुछ वारदातें हो जाती हैं तो इन महिलाओं को समय पर अनुकूल सहायता पंहुचाकर उनके दुख-दर्द को बहुत कम किया जा सकता है व जीवन सामान्य बनाया जा सकता है। इस तरह के सफल प्रयासों से भी सीखना चाहिए ताकि उन्हें और व्यापक बनाया जा सके।

इस संदर्भ में अजमेर के किशनगढ़ ब्लाक में महिला समूहों का गठन प्रेरणादायक रहा है जिनके प्रयासों से महिला हिंसा में कमी आई। सहारनपुर व देहरादून जिलों में महिला हिंसा कम करने व हिंसा पीड़ित महिलाओं को समय पर सहायता पंहुचाने के 'दिशा' के प्रयास चर्चा का विषय बने हैं। पश्चिम दिल्ली में जागृति महिला समिति ने अनेक पेचीदा व कठिन मामलों में हिंसा की शिकार महिलाओं को राहत दिलवाई। इस तरह के अनेक प्रयासों के अनुभवों, समस्याओं, उपलब्धियों व कठिनाइयों से संजो कर महिलाओं के विरुद्ध हिंसा कम करने की असरदार रणनीति बनाई जा सकती है। पूरे समाज को चाहिए कि वह महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को कम करने को, आधी दुनिया' के विरुद्ध हिंसा कम करने को उच्च प्राथमिकता दे। साथ ही यह जरूरी है कि वह हिंसा की शिकार महिलाओं के प्रति सहानभूति व सहयोग का रुख अपनाए।

राष्ट्रीय सहारा 14.2.2013

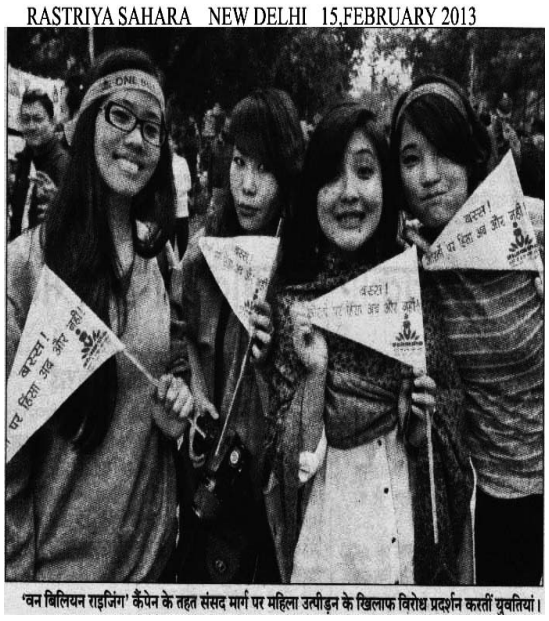

RASTRIYA SAHARA NEW DELHI 15,FEBRUARY 2013

'वन बिलियन राइजिंग' कैंपेन के तहत संसद मार्ग पर महिला उत्पीड़न के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करतीं युवतियां।

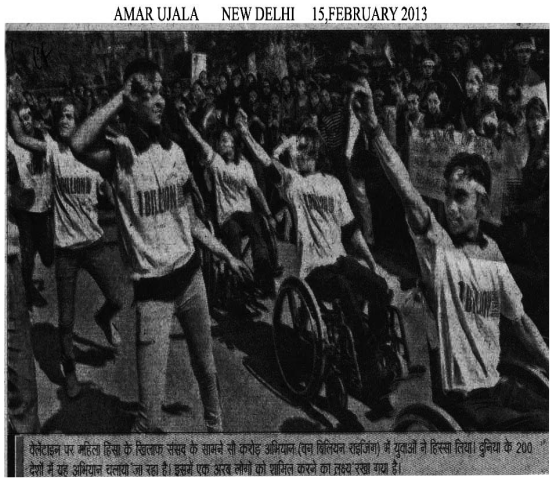

AMAR UJALA NEW DELHI 15,FEBRUARY 2013

महिलाओं की सुरक्षा को लेकर विशेष अभियान आज

नई दिल्ली, 13 फरवरी (जनसत्ता)। यहां गुरुवार को अलग-अलग क्षेत्रों की महिलाएं, पुरुष और युवा एक साथ दिल्ली में पूरे दिन चलने वाले 'उमड़ते सौ करोड़ अभियान' का हिस्सा बनेंगे। महिलाओं को पूर्ण सुरक्षा दिलाने के उद्देश्य से द्वारका सेक्टर 14 में गुरुवार को संगीत, नृत्य, नाटक, रैली और परिचर्चा से समाज का ध्यान खींचने की कोशिश होगी। यह जानकारी यहां आयोजकों ने दी। कमला भसीन ने इस अभियान के बारे में कहा कि 1947 में भारत को ब्रिटिश शासन से आजादी मिली लेकिन महिलाओं को अब तक आजादी नहीं मिली है।

अब समय आ गया है जब महिलाओं और युवतियों के लिए एक नया आजादी का आंदोलन शुरू हो जिसमें उन्हें पितृसत्तात्मक सोच और पुरुषवादी हिंसा से आजादी मिले। भारतीय संविधान में प्रत्येक महिला और पुरुष को बराबरी के अधिकार मिले हुए हैं। इनका प्रत्येक भारतीय को पालन करना चाहिए। 14 फरवरी के दिन आप लोग एक मिनट के लिए ही उन लाखों निर्दोष महिलाओं के बारे में सोचें जिन्हें भावनात्मक, मानसिक और शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ता है। इस अन्याय को आप शांत होकर मत देखते रहिए। नागरिक संगठन समर्थयम विकलांग महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को रोकने की दिशा में काम करती है। संस्था इन महिलाओं को समानता, आजादी और बराबर की हिस्सेदारी दिलाने की दिशा में सक्रिय है। समर्थयम की कार्यकारी निदेशक और विकलांग लोगों के अधिकारों के लिए काम करने वाली कार्यकर्ता अंजली अग्रवाल ने इस अभियान का उद्देश्य उमड़ते दिल्ली को एक सुरक्षित और बिना भेदभाव वाला शहर बनाना है। अंजली अग्रवाल ने यह भी बताया है कि इस मसले पर जागरूकता फैलाने वाली थीम पर विकलांग नृतकों का दल व्हीलचेयर के जरिए 14 फरवरी को एक नृत्य प्रस्तुत करेगा।

आंध्र प्रदेश में शहरी और ग्रामीण इलाकों की महिलाएं भी इस आंदोलन से जुड़ने को तैयार हैं। हैदराबाद में अस्मिता सहित 28 अन्य संस्थाएं नेकलेस रोड पर आयोजित एक रैली में हिस्सा लेगी। इसके अलावा पीपल्स प्लाजा में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होगा। ग्रामीण इलाके में होने वाले अभियान में करीब 10 लाख ग्रामीण महिलाओं के शामिल होने की उम्मीद है जिसे आंध्र प्रदेश ग्रामीण राइजिंग अभियान कहा जा रहा है। महिला ग्राम्या संसाधन केंद्र, आंध्र प्रदेश की रुकमिणी राव ने कहा कि महिलाओं को लिंग जांच और कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ आवाज उठानी होगी तभी जाकर समाज में समानता आएगी।

वहीं भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में नॉर्थ ईस्ट नेटवर्क ने राज्य सरकारों से अपील की है कि वे महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा करें। भोपाल में राज्य के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान भी इस अभियान में शरीक होंगे। 'बोल कि लब आजाद हैं तेरे' नामक इस कार्यक्रम में शबाना आजमी मुख्य आकर्षण होंगी। दिल्ली में आयोजित इस अभियान का मुख्य आकर्षण पार्लियामेंट स्ट्रीट में शाम पांच बजे से आठ बजे तक होने वाला सांस्कृतिक आयोजन है। इसमें अस्मिता थिएटर की ओर से एक नाटक और विद्या शाह की गीतों का आयोजन होगा। इसके अलावा लेडी श्रीराम कालेज, मिरांडा हाउस और कमला नेहरू कालेज के छात्र-छात्राएं भी अपनी प्रस्तुति पेश करेंगे।

जनसत्ता 14.2.2013

DAINIK BHASKAR NEW DELHI 15,FEBRUARY 2013

वन बिलियन राइजिंग : महिला अपराध के खिलाफ आवाज

AMAR UJALA NEW DELHI 15,FEBRUARY 2013

वन बिलियन राइजिंग कैंपेन

देखी सुनी – मुख्य हिंदी समाचार पत्रों में छपने वाले महिला मुद्दों से सम्बन्धित खबरो व लेखो का त्रैमासिक संकलन है। संकलित लेखों में व्यस्त विचार लेखकों के निजी विचार है, ज़रुरी नही यह हमारी संस्थागत सोच व क्रियांवयन को दर्शाते हो।

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें–
जागोरी, बी–114, शिवालीक, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017,
फ़ोन: 011–26691219, 26691220
email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org,www.jagori.org

Bread for the World, Misereor के सहयोग से प्रकाशित